— शिक्षा-महिमा —

सबसे प्रथम कर्त्तव्य है शिक्षा बढ़ाना देशमें,
शिक्षा बिना ही पड़ रहे है आज हम सब क्लेशमें।
शिक्षा बिना कोई कभी बनता नहीं सत्पात्र है;
शिक्षा बिना कल्याण की आशा दुराशा मात्र है।

स्त्री-शिक्षा का महत्व

विद्या हमारी भी न तब तक कानमें कुछ आयगी।
अर्द्धांगिनीको भी सुशिक्षा दी न जब तक जायगी॥
सोचो कहीं, नारियाँ किस बातमें हैं कम हुईं।
मण्डन से शास्त्रार्थमें है भारती के सम हुईं॥
क्या कर नहीं सकतीं भला यदि शिक्षिता हों नारियाँ।
रण-रंग-राज्य सुधर्म-रक्षा कर चुकीं सुकुमारियाँ॥

॥ श्री वर्द्धमानाय नमः ॥

श्री. अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेन्स द्वारा मान्य

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड,

पा थ र्डी,

जैन सिद्धांत प्रथमा प्रथम खंण्ड का पाठ्य ग्रंथ

जैन पाठावली भाग २

— प्रकाशक —

अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेन्स की सम्मति से

बद्रीनारायण शुक्ल

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी.

मुद्रकः— बद्रीनारायण शुक्ल श्री सुधर्मा मुद्रणालय

८३२ जूना कापड बाजार पाथर्डी, अ. नगर.

तृतीय संस्करण ३००० | मूल्य बारह आने | वीर सं २४८६ ई. सन् १९५९
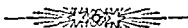
प्राक्कथन

हमें बडी प्रसन्नता है कि धार्मिक शिक्षण के लिये कोन्फरेन्स की ओर से तैयार की गई जैन पाठावली के द्वितीय भाग की यह तृतीयावृत्ति श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी द्वारा प्रकाशित की जा रही है। पाठ्य पुस्तक के रूप में जैन समाज ने पाठावली का जो मूल्यांकन किया है वह हमारे लिये हर्ष का विषय है।

बालकों को जैन संस्कृति और जैन तत्त्वज्ञान का सरलता से बोध कराने के लिये ऐसे सर्वमान्य पाठ्यक्रम की माँग कोन्फरेन्स से होती रहती थी। फलस्वरूप यह पाठावली श्री धार्मिक शिक्षण समिति द्वारा श्री संतबाल जी से तैयार कराई गई है।

जैनशाला, छात्रालय और स्कूलों में क्रमशः शिक्षण दिया जा सके और उत्तरोत्तर बालक धार्मिक ज्ञान प्राप्त कर सकें इस तरह इस पाठावली के ७ भाग किये गये हैं।

हम आशा करते हैं कि जहाँ २ अभी तक इस पाठावली को अपने पाठ्यक्रम में स्थान नहीं दिया गया है वहाँ २ सभी स्कूल, पाठशाला और छात्रालय यथा शीघ्र इसे अपना लेंगे और बालकों के कोमल हृदय पर जैन संस्कृति की गहरी छाप डालने में सहायक होंगे।

आनंदराज सुराणा   धीरजलाल के. तुरखिया

खीमचंद मगनलाल बोरा,   शांतिलाल व. शेठ

रामनारायण जैन

मानद् मंत्री

श्री. अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेंस

प्रकाशक की ओर से

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी और श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेन्स का धार्मिक शिक्षण प्रचार कार्य में एक समान ध्येय होने से कॉन्फरेन्स द्वारा तैयार कराई गई जैन पाठावली को बोर्ड ने अपने पाठ्यक्रम में स्थान देने का निश्चय किया। कान्फरेन्स ने भी पाथर्डी बोर्ड को अपनी मान्यता प्रदान करते हुए पाठावली के सातों भागों के हिन्दी और गुजराती संस्करणों का प्रकाशन करने की सम्मति बोर्ड के पुस्तक प्रकाशन विभाग को देकर एक बडी उदारता प्रकट की है।

तदनुसार जैनपाठावली भाग २ को प्रकाशित करते हुए हमें महान् प्रमोद हो रहा है। विश्वास है परीक्षार्थीगण तथा जिज्ञासु पाठक इससे यथेष्ट लाभ उठायेंगे।

बोर्ड के पुस्तक प्रकाशन विभाग को पल्लवित करने वाले जिस सद्‌गृहस्थ के द्रव्य का सदुपयोग इस पुस्तक के प्रकाशन में किया गया है उनकी उदार भावना धार्मिक प्रवृत्ति और विद्या प्रचार की अभिरुचि सर्वथा प्रशंसनीय है। आप क्षेत्रसे पाथर्डी ग्राम के जितने समीपस्थ हैं, भावसे पाथर्डी की पारमार्थिक संस्थाओं के उससे भी अधिक निकटवर्ती हैं। इन संस्थाओं के लिये अपने द्रव्य का सदुपयोग करते हुए आपको परम प्रसन्नता [illegible]। यही कारण है कि आप सदैव ऐसे अवसर की प्रतीक्षा [illegible] रहते हैं जिसमें अपनी भावना को सफल कर कृतकृत्य बनने का सद्भाग्य प्राप्त हो। फलस्वरूप श्री तिलोक रत्न स्था.

जन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के प्रकाशन विभाग, पदक विभाग और भवन विभाग को आपके बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हैं। बोर्ड तथा वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा इन दोनों ही संस्थाओं के आप संरक्षक सदस्य हैं। श्री अमोल जैन सिद्धान्त-शाला और श्री रत्न जैन पुस्तकालय को भी आपने अच्छा आश्रय दिया है। इस प्रकार सहस्त्रों की संपत्ति का दान करने वाले चाँदा (जिला अहमदनगर) निवासी श्रीमान् तिलोक-चंदजी खूबचंदजी गुन्देचा को हम इसलिये और आदर की दृष्टि से देखते हैं कि आप इन संस्थाओं की प्रत्येक सभाओं के अवसर पर उपस्थित रहकर तथा समय-समय पर पाथर्डी कार्यालय में आकर संचालन पद्धति और कार्यगति से परिचित होते रहते हैं। अपने धनिक जैन समाज में द्रव्य राशि का अनुदान करने वाले बहुत से दानवीर दिखाई देते हैं परन्तु उस दान के सदुपयोग का ख्याल रखने वाले विरले ही महानुभाव मिलते हैं।

श्रीयुत गुन्देचाजी अपनी शान्तवृत्ति, उदारभावना, निष्पक्षता और समयसूचकता आदि गुणों के लिए अनेकशः धन्यवाद के पात्र हैं। आपकी अनुकरणीय प्रवृत्तियों के प्रति हार्दिक आदर व्यक्त करते हुए उदात्त सहयोग के लिए आपका शतशः आभार मानते हैं।

बदरीनारायण शुक्ल

चन्द्रभूषण मणि त्रिपाठी शोभाचन्द्र भारिल्ल

— मंत्रीगण —

श्री ति. र. स्था. जन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी, अ' नगर,

श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रमण संघ के साहित्य शिक्षा-संचालक पंडित रत्न मुनि श्री सुशीलकुमारजी म. का

अभिमत

बालक और जिज्ञासु कोरी और खुली किताब है, उसमें जिस प्रकार की संस्कार पंक्तियाँ लिख दी जायेंगी वे ही उभर आयेंगी और पुस्तक का शरीर बन जायेंगी। यह एक परम सत्य है, यदि आप इसकी यथार्थता स्वीकार करते हैं तो विश्व के भावी कर्णधारों और धर्म के भावी सैनिकों में सच्चे संस्कार डालने का मधुर प्रयास करिये।

धन्यवाद है उस पाथर्डी बोर्ड और उसके संस्थापकों को जिन्होंने आर्हती संस्कृति को सदा जिन्दा बनाये रखने के लिये इस प्रकार की आवश्यक संस्था खडी की।

जैन पाठावली का यह दूसरा भाग आपके सामने है। भाषा और भाव में परिवर्तन-परिवर्द्धन की आवश्यकता दिखाई देते हुए भी समय की स्वल्पता के कारण पूर्ववत् ही प्रकाशित करना पसन्द किया गया है। भविष्य में सर्वांगीण गुणों से सुसज्ज पाठावली आप तक पहुँचाने में समर्थ हो सकूँगा, इसी भावना के साथ—

—मुनि सुशील

पाठकों और शिक्षकों से

जैन बालकों को धार्मिक शिक्षा देने के लिये इस पाठावली के सात भाग तैयार किये गये हैं। चौथी कक्षा में पढने वाला बालक पाठावली का प्रथम भाग पढ सकता है। इस दृष्टि से मैट्रिक का छात्र पाठावली के सातवें भाग का अभ्यास कर सकता है।

जो पाठ याद करने के लिये दिया जाय वह पहले अध्यापकों द्वारा बालकों के समक्ष पढ़ा जाना चाहिये और उसे बराबर समझा देना चाहिये। तत्त्वविभाग और इतिहास जैसे विषयों के लिए तो हमारी यह सूचना अनिवार्य रूप से लागू होती है।

कथा-- कहानी बालक अपनी भाषा में कह सकें, उस तरह अभ्यास कराना चाहिये।

विभिन्न भावना के जो गहरे विचारों के स्थान हैं वहां स्पष्टीकरण करने के लिये अधिक विस्तार किया गया है। अध्यापकों को चाहिये कि वह भाव और विस्तार से विद्यार्थियों को समझाने का प्रयत्न करें।

जैन धर्म साम्प्रदायिक धर्म नहीं है। विश्व के अनेक धर्म कहां स्थिर हैं? किस लिये पैदा हुए और इनका अन्तिम ध्येय क्या है? ये सब बातें तटस्थ भाव से विचारना और अनेकान्त दृष्टि से इनकी तुलना करना, इसी में जैन दर्शन का महत्त्व है। इस पाठ्य-क्रम के पीछे यह विचार श्रेणी मुख्य रूप से रखी गई है। संसार में नाम से होने वाले अनिष्ट और उन्हें दूर करने के उपायों का ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करना? यह मुख्यतया अध्यापकों की योग्यता पर अवलम्बित है इन पाठ्यक्रम की पुस्तकों में से इस प्रकार का ज्ञान-दोहन करके अध्यापक विद्यार्थियों के दिल-दिमाग में भरेंगे ऐसी अपेक्षा की जाती है।

पाठ में आने वाले पद्य और काव्यविभाग के काव्यों का अर्थ और भाव अध्यापकों को अच्छी तरह समझाना चाहिये।

-- संतबाल

धीरजलाल के. तुरखिया
मंत्री, धार्मिक शिक्षण समिति जैन गुरुकुल, ब्यावर

❋ विषयानुक्रमणिका ❋

पाठ	विषय	पृष्ठ

– काव्य विभाग –

जैन पाठावली

[द्वितीय भाग]

सामायिक

पाठ पहला

समभाव

सुख-दुख दोनों सम गिनो,
मानो हर्ष न शोक
नवका जैसे तुम वनो,
समभावे मन रोक ॥

वाल मित्रों ! 'सामायिक' शब्द तो तुमने सुना है। उसका संक्षिप्त अर्थ भी तुम सीख चुके हो। दो घडी तक परमात्मा में मन को पिरोये रखना सामायिक कहलाता है। इस पाठ में सामायिक के विषय में कुछ अधिक वातें वतलाई जाएँगी।

'सामायिक' शब्द का सरल अर्थ है--'समभाव का लाभ।' जिस क्रिया के द्वारा समभाव की प्राप्ति होती है, उस क्रिया को सामायिक कहते हैं।

जब हमारा मनचाहा काम नहीं होता तब हमें दुःख होता है। कोई हमारा अपमान करता है तो हमें गुस्सा आता है। कोई कठोर शब्द हमें कहता है तो भी हमें क्रोध आता है। अपनी कोई प्यारी चीज़ गुम हो जाय तो खेद होता है।

अब इससे उलटी बात सोचिये। हमें कोई प्रिय चीज़ मिल जाती है तो बहुत आनन्द हो जाता है। अपनी तारीफ़ सुनकर अपने को हर्ष होता है। हमारा मनचाहा होता है तो हम खुश होते हैं।

इस प्रकार मन में हर्ष और शोक, सुख और दुःख तथा मान या क्रोध की जो भावनाएँ उत्पन्न होती हैं उन भावनाओं को विषम भाव कहते हैं।

विषम भाव से उलटा समभाव है। जिस मनुष्य में सम-भाव होता है, उसे हर्ष या शोक, सुख या दुःख, मान या क्रोध कुछ भी नहीं होता। पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुःख है। सुख-दुःख भोगते हुए भी मन में हर्ष या विषाद न होने देना ही समभाव है। धर्म का आचरण करने से समभाव आता है

विषमभाव और समभाव को समझने के लिये आठ और नौ के अंक का उदाहरण ले लें। पहले आठ के अंक को लो। आठ के अंक का किसी भी दूसरे अंक के साथ गुणा करो। गुणा करने पर जो गुणनसंख्या आएगी, उस संख्या के अंकों का जोड़ करो। जोड़ करनेपर मालूम होगा कि उसमें घट-बढ़ होती है। उदाहरणार्थ-आठ का दो के साथ गुणा किया। गुणन संख्या १६ आई। १६ में दो अंक हैं—एक और छह। इन दोनों को आपस में जोड़ दो तो ६+१=सात होंगे। इसी तरह तीन के साथ गुणा करने से २४ आते हैं। अब २४ के

२ और ४ का जोड़ किया जाय तो ६ होंगे। इस तरह घट-बढ़ होती रहती हैं।

परन्तु ९ के अंक के विषय में यह बात नहीं है जैसे-९ का २ से गुणा करो तो १८ की संख्या आएगी। १८ के आठ और एक का जोड़ करने पर संख्या ९ ही होगी। चलो अब तीन से गुणा करो। गुणनफल २७ आया। अब ७ और दो का जोड़ करो। वही नौ हो गया। इसी तरह तीन से लेकर आगे नौ तक किसी भी अंक के साथ गुणा कर देखो और गुणनफल का जोड़ करो तो ९ ही होंगे। न कम और न ज्यादा। मतलब यह है कि आठ के अंक में जैसी विषमता है, नौ के अंक में वैसी विषमता नहीं है। इससे तुम ९ के अंक का महत्त्व समझ सकते हो।

सारांश यह है कि संसार की घटनाओं का जिस मनुष्य के मन पर असर होता है, वह आठ के अंक के समान विषम—भावी है और जिसके मन पर अच्छी या बुरी—किसी भी घटना का प्रभाव नहीं पड़ता वह नौ के अंक के समान सम—भावी है। अतएव सब को ९ के अंक के समान प्रत्येक अवस्था में समान रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

पाठ दूसरा

नमस्कार मंत्र

मन में सुख-दुःख का भाव उत्पन्न न होने देना, और उत्पन्न हो जाय तो उसे कोशिश करके दबा देना। यों करते—

करते, धीरे—धीरे क्रोध, मान, माया, लोभ, राग और द्वेष वगैरह मन की कमजोरियों को दबाकर समभावी बन जाना चाहिये। इसी को वीतरागभाव कहते हैं।

इस तरह की वीतरागता अभी हममें आई नहीं है। लेकिन जिन महापुरुषों में यह वीतरागता आ गई है, उनका स्मरण करके हम पवित्र बनते हैं और उनके ही समान बनने की प्रेरणा पाते हैं।

सामायिक का पहला पाठ, जो तुम सीख चुके हो यह है—

नमो अरिहंताणं—अरिहन्त देवों को नमस्कार हो।
नमो सिद्धाणं—सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार हो।
नमो आयरियाणं—आचार्यों को नमस्कार हो।
नमो उवज्झायाणं—उपाध्यायों को नमस्कार हो।
नमो लोए सव्वसाहूणं—लोक के सब साधुओं को नमस्कार हो।

यह मन्त्र नमोकारमन्त्र या नमस्कार मन्त्र कहलाता है। इसमें पाँच पद हैं। पाँच पदों को नमस्कार करने का यह पाठ है। इसे पंचपरमेष्ठी नमस्कारमन्त्र भी कह सकते हैं।

इन पाँचों पदों में से पहले पद में अरिहन्त भगवान् को और दूसरे पद में सिद्ध भगवान् को नमस्कार करते हैं। अरिहन्त भगवान् और सिद्ध भगवान् हमारे शासन देव हैं।

प्रश्न—अरिहन्त का अर्थ क्या है ?

उत्तर—'अरि' और 'हन्त' यह दोनों शब्द मिलकर 'अरिहन्त' शब्द बना है। 'अरि' का अर्थ है–दुश्मन। हन्त का

अर्थ होता है-हनने वाला-नाश करने वाला। इस प्रकार 'अरिहन्त' का अर्थ है-दुश्मनों का हनन करने वाला। हमारे असली दुश्मन क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय हैं। इन कषायों का सर्वथा नाश करने वाले को केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है। केवलज्ञानी जब संसारमें विचरते हैं तब वे अरिहन्त, वीतराग, जिन और केवली आदि शब्दों से कहे जाते हैं। जब वही केवली भगवान् शरीर छोड़ कर मोक्ष पा लेते हैं, तब उन्हें सिद्ध कहते हैं।

प्रश्न—केवली किसे कहते हैं ?

उत्तर—केवल अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञान जिन्हें प्राप्त हो गया है वे केवली कहलाते हैं।

प्रश्न—ऐसा सम्पूर्ण ज्ञान तीर्थंकर को ही होता है न ?

उत्तर—नहीं, दूसरों को भी हो सकता है।

तीर्थंकर को छोड़कर दूसरे जो सम्पूर्ण ज्ञानी होते हैं, वे 'सामान्य केवली' कहलाते हैं। ऐसे 'सामान्य केवली' को 'वीतराग' भी कह सकते हैं।

प्रश्न—बाकी के तीन पदों में किसको नमस्कार किया गया है ?

उत्तर—अन्त के तीन पदों में आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को नमस्कार किया गया है। ये तीनों गुरू कहलाते हैं।

प्रश्न—आचार्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—संघ के नायक को आचार्य कहते हैं। वे खुद पाँच आचारों का पालन करते हैं और दूसरों से पालन करवाते

हैं। अन्य साधुओंसे आचार्य का प्रभाव अधिक होता है। शास्त्र में उनके छत्तीस गुण बतलाये गये हैं।

प्रश्न—उपाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर—जो आगम शास्त्रों के पारगामी हैं और दूसरों को पढ़ाते हैं. वे विद्वान् मुनि उपाध्याय कहलाते हैं। जैन शास्त्र में उनके पच्चीस गुण कहे हैं।

साधुओं के विषय में पहले थोड़ा बतलाया गया है। विशेष बात यह है कि वे पाँच महाव्रतधारी होते हैं। रातदिन तप, संयम, ज्ञान, ध्यान और परोपकार में लगे रहते हैं। जैनशास्त्र में साधुके सत्ताइस गुण बतलाये गये हैं।

प्यारे विद्यार्थियों! जिस सामायिक के विषयमें ऊपर कहा गया है, उस सामायिक की क्रिया करना हमारा धर्म है।

धर्म किसे कहते हैं? यह बात तुम्हें सामान्य रूप से मालूम है। धर्म के तीन प्रकार हैं:—(१) जानना (२) आचरण करना (३) छोड़ना।

(१) सद्‌गुण और दुर्गुण के विषय में जानना, यह जानना रूप धर्म है। इस पाठ को बोलना और सामायिक की क्रिया को समझना भी जानना रूप धर्म है।

(२) किसी भी छोटे--बडे जीव को कष्ट न पहुँचाना. बल्कि उसकी सेवा करना, सत्य बोलना, बिना पूछे चीज़ न लेना, हराम का न खाना, ब्रह्मचर्य पालना, लोभ--लालच को घटाना आदि आचरण में लाने योग्य धर्म हैं।

(३) लोभ, लालच, चुगली, निन्दा, क्रोध, अभिमान, हिंसा झूठ, चोरी आदि दुर्गुणों को छोड़ना, छोड़ना रूप धर्म है।

जिन दस श्रावकों और सोलह सतियों के नाम तुमने याद किये हैं, उन्होंने इस धर्म को जाना था और जान कर पाला था।

धर्म का आचरण करने से हमारा यह भव भी सुधरता है और परभव भी–सुधरता है। मृत्यु के बाद अच्छी गति मिलती है।

पाठ तीसरा

गुरु की आवश्यकता

देव खड़े गुरु भी खड़े, किसको प्रथम प्रणाम ?
देव बतावनहार गुरु, उनको प्रथम प्रणाम।

रास्ता न जानने वाला मुसाफिर अपने साथ रास्ता जानने वाले को साथ ले लेता है। हम सब मोक्ष के मुसाफिर हैं। इसलिये मोक्ष का मार्ग बतलाने वाले मार्गदर्शक गुरु की हमें आवश्यकता है। जो अपनी इच्छा के अनुसार बर्ताव करता है वह स्वच्छंदी कहलाता है। उसे 'निगुरा' या 'निगोड़ा' भी कहते हैं। ऐसा आदमी पग-पग पर ठोकर खाता है। इसलिये संत पुरुष ऐसे 'निगुरे' से दूर रहने की सीख देते हैं। जो सदाचारी, निर्लोभी और परमार्थी होता है वही सद्गुरु कहलाता है। सद्गुरु ही अपना और पराया भला कर सकते हैं। कवि ने कहा भी है:—

असार इस संसार में, गुरु-कृपा है सार ।

सद्गुरु की सेवा करो, [illegible] ॥

सद्‌गुरु मिल जाय तो जीवन सुधर जाय और धीरे-धीरे वीतराग पद प्राप्त हो जाय ।

बालक-भाई साहब ! क्या हम भी वीतराग बन सकते हैं ?

शिक्षक-हाँ; यह तो पहले कह चुका हूँ । परन्तु सद्‌गुरु की कृपा से वीतराग बनने में सरलता होती है । जिन्होंने घर-द्वार त्याग दिया है, जो धन-दौलत नहीं रखते हैं, जो * स्त्रियों के साथ किसी भी प्रकार का सहवास नहीं रखते, जो संयमी जीवन विताते हैं, जो सच्चे धर्म का उपदेश देते हैं; ऐसे सद्‌-गुरु की कृपा से हम अवश्य ऊँचे उठ सकते हैं ।

बालक-सद्‌गुरु की कृपा कैसे पा सकते हैं ?

शिक्षक-गुरुदेव की कृपा पाने के लिये हमें उनकी भक्ति करनी चाहिये; उनका आदर-सत्कार करना चाहिए, उनकी सेवा करनी चाहिए।

बालक--गुरुजी की वन्दना करने से और उनके योग्य आहार-पानी उन्हें देने से, वस्त्र देने से उनकी सेवा-भक्ति हो जायगी ?

शिक्षक- यह तो सब करना ही चाहिये, पर इतना ही काफी नहीं है । हमें उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए ।

---

*साध्वियाँ पुरुषों के साथ किसी भी प्रकार का सहवास नहीं रखतीं ।

हम सब साथ मिलकर, एक ही ढंग से गुरु महाराज को वंदना करें तो कितना अच्छा हो ?

बालक — भाई साहब ! आपने हमें गुरु वंदना का तथा वन्दना करने की विधि का पाठ सिखलाया है। वन्दना से होने वाले फायदे भी समझाये हैं मगर सबको साथ-साथ, एक ही ढंग से वन्दना करने के लिए क्यों कहते हैं ?

शिक्षक — बालकों ! एक साथ वन्दना करने से सबका उत्साह बढ़ता है। शर्म हट जाती है। तुम्हें मालूम होगा कि फौज के सिपाहियों को हमेशा सलाम करने की तालीम दी जाती है। हमेशा तालीम लेने से स्फूर्ति मिलती है। इसी को 'अनुशासन' कहते हैं। इसलिये हमेशा धर्मस्थानक में जाकर गुरु महाराज को वन्दना करना चाहिये। धर्मस्थानक में अगर साधुजी या महासतियाँ मौजूद न हों तो ईशान कोण में श्री सीमंधर स्वामी को वन्दना करना चाहिए। वे महाविदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकरों में से एक हैं। इसलिये वे परमदेव हैं। तुम्हें वन्दना-विधि का पाठ याद है न ?

बालक — जी हाँ।

शिक्षक — तो चलो, उसे बोलकर हम सब साथ-साथ वन्दना करें।

पाठ चौथा

तिक्खुत्तो

(गुरु वन्दना का पाठ)
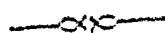
तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि ॥

तिक्खुत्तो– तीन वार
आयाहिणं– दाहिनी ओर से
पयाहिणं– प्रदक्षिणा
करेमि– करता हूँ
* वंदामि– (मैं) वन्दना करता हूँ
नमंसामि– नमस्कार करता हूँ
सक्कारेमि– सत्कार करता हूँ
सम्माणेमि– सन्मान करता हूँ
कल्लाणं– (हे पूज्य !) आप कल्याणरूप हैं
मंगलं– (हे पूज्य !) आप मंगलकारी हैं

---

* तिक्खुत्तो से लेकर करेमि तक के शब्द विधि बताने के लिए हैं। अतः पाँच अंग (दो हाथ, दो पैर और सिर) नमाकर वन्दना करते समय, प्रकट रूप में 'वंदामि' से ही आगे का पाठ बोलना चाहिए।

देवयं– (हे पूज्य !) आप धर्म देव समान हैं
चेइयं– (हे पूज्य!) आप ज्ञानवान् हैं
पज्जुवासामि– (आपकी) सेवा करता हूँ।

पद्यानुवाद

तीन वार गुरुवर प्रदक्षिणा, आदक्षिण में करता हूँ,
वन्दन, नति सत्कार और, सन्मान हृदय से करता हूँ।
मंगलमय, कल्याण-रूप, देवत्व भाव के धारक हो,
ज्ञान रूप हो प्रबल अविद्या-अंधकार संहारक हो।
पर्युपासना श्री-चरणों की, एक मात्र जीवन-धन है।
हाथ जोड़कर शीस झुका कर, वार वार अभिवंदन है।।

पाठ पाँचवाँ

विवेक और यतना

प्रकट करो जो भूल से, हुए अभी तक पाप।
फिर होने पावें नहीं, करके पश्चात्ताप।।
इसीलिए यह तीसरा है सामायिक-पाठ।
जीवन में करके अमल, पाओ सुख के ठाठ।।

शिक्षक—रसिक भाई, तुमने सामायिक के दोनों पाठ अच्छी तरह पक्के कर लिये हैं। चलते-फिरते या उठते बैठते किसी

छोटे-बडे जीव को मारा हो, सताया हो, दुखी किया हो, तो उन सब पापों को याद करके उसके लिए पश्चात्ताप करना चाहिए। यह तीसरा पाठ पश्चात्ताप करने के लिए है।

रसिक—गुरुजी ! यह पाठ तीसरा क्यों रक्खा गया है ?

शिक्षक—भाई ! सामायिक की क्रिया धर्म है और हिंसा करना अधर्म है। यह बात तुम जानते हो न ? धर्म करने के लिए पहले अधर्म से दूर होना ही चाहिए। जैसे उजेला चाहिए तो अंधेरे से दूर रहना चाहिए। सामायिक के पिछले दो पाठों में देव और गुरु को वन्दन और नमस्कार किया गया है उसके बाद अब पाप से निवृत्त होने—दूर हटने के लिए यह तीसरा पाठ रखा गया है। हमारे द्वारा जान में या अनजान में, छोटे-बडे जीवों की जो हिंसा होती है; उसका मुख्य कारण अपना अविवेक है—अयतना है। इसलिए अविवेक या अयतना को हटाकर हमें विवेक या यतना पालना सीखना चाहिए। यही इस पाठ का सार है।

रसिक—गुरुजी ! 'यतना पालना' क्या कहलाता है ?

शिक्षक—आँखों से अच्छी तरह देख भाल कर चलना, समझ-बूझकर काम करना, पानी के वर्त्तन आदि को उघाडे न रखना और ऐसा कोई काम न करना जिससे किसी प्राणी को कष्ट पहुँचे। हमें कोई मारे या कुचले तो दुःख होता है। इसी तरह वनस्पति वगैरह सभी जीवों को मारने या कुचलने से कष्ट पहुँचता है। पानी ढोरने से भी जीवों की हिंसा होती है अगर हम ऐसा न करें तो कहा जायगा कि हमने यतना की है।

चन्द्रकान्त—गुरुजी ! तो फिर हमें कैसा वर्त्ताव करना चाहिए ? यह बात आप हमें समझाएँगे ?

शिक्षक—अवश्य, अवश्य। सुनो। डांस-मच्छर आदि जीवों को मारना नहीं चाहिए। यह जीव-जंतु गंदगी से उत्पन्न होते हैं इस कारण गंदगी ही नहीं फैलने देना चाहिए। कीडों-मकोडों आदि जंतुओं को बचाना चाहिए। मेंढक, पक्षी, बंदर वगैरह को हैरान नहीं करना चाहिए। बिल्ली, कुत्ता, गाय, भैंस वगैरह जीवों से डरना नहीं चाहिए और न उन्हें मारना चाहिए। हरे पत्ते या फल-फूल वृथा नहीं तोड़ना चाहिए। पानी गंदा नहीं करना चाहिए। बीज या वनस्पति को फिजूल कुचलना नहीं चाहिए। मनुष्य-मात्र को अपने ही समान समझकर किसी को सताना नहीं चाहिए।

यह पाठ सामायिक के समय का है। इसलिए सामायिक में तो ऊपर कही बातों का पूर्ण रूप से पालन करना ही चाहिए। दूसरे समय में भी विवेक और यतना नहीं भूलना चाहिए।

रमेशचन्द्र—गुरुजी! क्या पानी और वनस्पति में भी जीव हैं?

शिक्षक—हाँ भाई! एकेन्द्रिय (स्थावर) जीव पाँच प्रकार के हैं। उनमें पानी और वनस्पति का भी समावेश होता है। यह विषय फिर समझाएँगे। यह सब छोटे-बड़े जीव भी हमारी ही तरह जीने की इच्छा रखते हैं। इसलिए उनकी रक्षा हमें करनी ही चाहिए।

सब बालक—तब तो, गुरुजी! जैसे बोल-चाल में विनय रखते हैं उसी तरह उठते-बैठते, चलते-फिरते या और कोई काम करते समय यतना रखेंगे।

पाठ छठा

इरियावहियं सूत्र

इच्छाकारेणं संदिसह भगवं! इरियावहियं पडिक्कमामि ·इच्छं· इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए विराहणाए गमणागमणे पाणक्कमणे बीयक्कमणे हरियक्कमणें ओसाउत्तिंग-पणग-दग-मट्टि--मक्कडा-संताणा--संकमणे जे मे जीवा विराहिया, एगिन्दिया बेइन्दिया तेइन्दिया चउरिन्दिया पंचिन्दिया अभिहया वत्तिया लेसिया संघाइया संघट्टिया परियाविया किलामिया उद्दविया ठाणाओ ठाणं संकामिया जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

इच्छाकारेणं संदिसह भगवं—भगवन् इच्छापूर्वक आज्ञा दीजिए।

इरियावहियं पडिक्कमामि — ईर्यापथिकी क्रिया (रास्ते में जाते-आते लगे हुए पापों की क्रिया) से निवृत्त होने की। **इच्छं**—प्रमाण है

इच्छामि पडिक्कमिउं—मैं पाप से निवृत्त होने की इच्छा करता हूँ।

इरियावहियाए—रास्ते में चलने से (जीव की)।

विराहणाए—विराधना हुई हो।

गमणागमणे—जाने और आने में।

पाणक्कमणे, वीयक्कमणे—प्राणी को दवाकर, वीज को दवाकर।

हरियक्कमणे, ओसा-उत्तिंग—हरी वनस्पति को दबाकर, ओस, कीड़ियों के बिल ।

पणग-दग-मट्टी—लीलन-फूलन, पानी, मिट्टी,

मक्कडा संताणा संकमणे—मकडी के जाले को दबाकर ।

जे मे जीवा विराहिया—मैंने जिन जीवों की विराधना की हो ।

एगिंदिया, बेइंदिया—एकइंद्रिय वाले, दो इंद्रियों वाले.।

तेइंदिया, चउरिंदिया,—तीन इंद्रियों वाले चार, इंद्रियों वाले ।

पंचिंदिया—पांच इंद्रियों वाले जीवों को ।

अभिहया—सामने आने पर चोट पहुँचाई हो ।

वत्तिया, लेसिया—धूल आदि से ढंका हो, मसला हो ।

संघाइया, संघट्टिया—इकट्ठा किया हो, छुआ हो ।

परियाविया, किलामिया—परिताप पहुँचाया हो। खेद उपजाया हो।

उद्दविया—हैरान किया हो ।

ठाणाओ ठाणं संकामिया—एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाया हो ।

जीवियाओ ववरोविया—प्राणों से रहित कर दिया हो तो ।

तस्स मिच्छामि दुक्कडं—वह मेरा पाप निष्फल हो ।

पद्यानुवाद

आज्ञा दीजे हे प्रभो ! प्रतिक्रमण की चाह है,
ईर्यापथ-आलोचना, करने का उत्साह है ।
आज्ञा मिलने पर करूं प्रतिक्रमण प्रारंभ में,
जाते-आते मार्ग में, किया जीव-आरंभ में ।

प्राणी, बीज तथा हरित, ओस, उत्तिंग सेवाल का
किया विमर्दन मृत्तिका, जल मकड़ी के जाल का।
एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय तथा, त्रीन्द्रिय की सीमा नहीं,
चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, नष्ट हुए हों यदि कहीं।
सन्मुख आते जो हने, और ढंके हों धूल से,
मसले हो यदि भूमि पर, व्यथित हुए हो भूल से।
आपस में टकरा दिये, छूकर पहुंचाई व्यथा,
पापों की गणना कहाँ, लम्बी है अब भी कथा।
दी हो कटु परितापना, ग्लानि-मरण सम भी किये।
त्रास दिया इक स्थान से, अन्य स्थान हटा दिये।
अधिक कहूँ क्या प्राण भी, नष्ट किये निर्दय बना,
दुष्कृत हो मिथ्या सकल, 'अमर' सफल हो साधना।
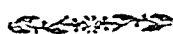
पाठ सातवाँ

आत्मशुद्धिका पाठ

'तस्स उत्तरी' पाठ है, पाप विशुद्ध उपाय,
तदनु देह का मोह तज, कायोत्सर्ग कराय।

विद्यार्थी—गुरुजी! सामायिक का चौथा पाठ 'तस्स-उत्तरी' का क्यों रक्खा गया है?

गुरुजी – पहले पाठ से तुमने नमस्कार करना सीखा, दूसरे पाठसे गुरु-सेवा सीखी, तीसरे पाठ से अपने पापों को देखना सीखा. अब चौथे पाठसे पाप छोड़ना सीखना ह।

विद्यार्थी – गुरुजी! तीसरेपाठमें 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं' कहा है। इससे पाप तो मिथ्या हो ही गया। फिर क्या छोड़ना वाकी रहा ?

गुरुजी – प्यारे विद्यार्थियों! आग लगने पर 'बुझ जावे' इतना कह देने से आग बुझ नहीं जाती। इसी तरह 'पाप मिथ्या हो' ऐसा बोल देने से काम नहीं चलता।

विद्यार्थी – तो पाप को दूर करने के लिए क्या करना चाहिये?

गुरुजी – पहले लगे हुए पापों से छुटकारा पाने के लिए प्रायश्चित्त लेना चाहिये। जिसका अपराध किया हो, उसके पास जाकर माफी माँगना चाहिये। ऐसा करने से पहले के पाप दूर हो जाते हैं। लेकिन नये पापों को रोकने के लिये अपनी आत्मा निर्मल बनानी चाहिए। संसार के जंजाल से दूर रहना चाहिए। तभी पाप-कर्म का पूरी तरह नाश हो सकता है।

विद्यार्थी – तो आत्मा को निर्मल बनाने के लिए क्या करना चाहिए ?

गुरुजी – देह का खयाल छोड़कर मन को आत्मध्यान में पिरोना चाहिए। यही सामायिक का सार है। चौथे पाठ के अन्त में यही क्रिया करनी पड़ती है। इसे 'काउसग्ग' या कायोत्सर्ग कहते हैं।

विद्यार्थी – गुरुजी! कायोत्सर्ग किस प्रकार करना चाहिए ?

गुरुजी – भाई, कायोत्सर्ग का अर्थ है - शरीर को त्यागना। मगर शरीर को त्यागने का अर्थ मर जाना नहीं है। मर जाने के बाद भी संसारी जीव के साथ सूक्ष्म (तैजस और कार्मण) शरीर लगा ही रहता है। कायोत्सर्ग का असली अर्थ शरीर को स्थिर करके अशुभ प्रवृत्तियों का त्याग करना है।

विद्यार्थी–गुरुजी ? कायोत्सर्ग की विधि क्या है ?

गुरुजी – हाँ सुनो। सबसे पहले एक आसन से बैठ जाना चाहिए। शरीर को जरा भी नहीं हिलाना–डुलाना चाहिए। वाणी से मौन रखना चाहिए और मन को आत्मा के ध्यान में लगा देना चाहिए। और या तो पाप की आलोचना करनी चाहिए अथवा परमात्मा का स्मरण करना चाहिए। यह कायोत्सर्ग की विधि है।

विद्यार्थी – गुरुजी ! मेरे पिताजी कभी–कभी पालथी मार कर बैठ जाते हैं। उस समय उनके दोनों हाथ, दोनों पैरों पर एक दूसरे के ऊपर सीधे रखे होते हैं। क्या वही कायोत्सर्ग कहलाता है ?

गुरुजी – हाँ, वही तो कायोत्सर्ग है। मगर कोई–कोई बैठते हैं और कोई–कोई खडे होकर हाथ लटका लेते हैं। कायोत्सर्ग किसी भी तरह किया जाय पर आत्मध्यान नहीं चूकना चाहिए।

विद्यार्थी – गुरुजी ! छींक या जँभाई आ जाय तो ?

गुरुजी – कायोत्सर्ग में ऐसी कुदरती बातों की छूट रहती है। इस छूट को 'आगार' कहते हैं। ऐसे आगार बारह हैं। ऐसी कुदरती बातों से शरीर हिल जाय तो कायोत्सर्ग भंग नहीं होता। यह सब तुम सामायिक के चौथे पाठ में देख सकोगे।

विद्यार्थी -- गुरुजी!] कायोत्सर्ग करते समय मन में कुछ बोलना भी पड़ता है ?

गुरुजी—हाँ, सामायिक के कायोत्सर्ग में 'इच्छामि पडि-क्कमिउं' का पाठ बोला जाता है। क्योंकि सामायिक में तो खास कर लगे हुए पापों की आलोचना ही करनी होती है। पाप से आत्मा को अलग रखने की दो घड़ी की क्रिया का नाम ही सामा-यिक है। इसलिए यह तीसरा पाठ बहुत जरूरी है।

विद्यार्थी—इस पाठ को बोलने के बाद भी कायोत्सर्ग चालू रखना चाहिए ?

गुरुजी—दर-असल तो कायोत्सर्ग तब तक करना चाहिए जब तक मन स्थिर रह सके। लेकिन यहाँ तो अभी सामायिक लेने की विधि बाकी है। इसलिए 'णमोकारमन्त्र' का पाठ बोल-कर कायोत्सर्ग समाप्त कर दिया जाता है।

विद्यार्थी—गुरुजी ! तब तो यह पाठ हमें जल्दी सिखा दीजिए।

गुरुजी—आज इतना ही याद कर लो। पाठ उतना ही लेना चाहिए, कि भली-भाँति याद हो सके। अगला पाठ तुम्हें कल सिखलाएँगे।

पाठ आठवाँ

सामायिक की विधि का चौथा पाठ

(तस्स उत्तरी का मूल व अर्थ पाठ)

तस्स उत्तरीकरणेणं पायच्छित्तकरणेणं विसोहीकरणेणं विसल्लीकरणेणं पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं, अन्नत्थ ऊससिएणं नीससिएणं खासिएणं छीएणं जंभाइएणं उड्डुएणं वायनिसग्गेणं भमलीए पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउसग्गो जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमोक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि।

१–कायोत्सर्ग करने का प्रयोजन

तस्स उत्तरीकरणेणं—आत्मा को पाप से दूर करने के लिए।

पायच्छित्तकरणेणं—प्रायश्चित्त करने के लिए।

विसोहीकरणेणं—विशेष शुद्धि करने के लिए।

विसल्लीकरणेणं—*शल्य-रहित करने के लिए।

---

*शल्य तीन हैं—(१) माया (कपट) (२) निदान (फल की कामना) (३) तथा मित्थात्व (खोटी श्रद्धा)।

पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए-पाप कर्मों का नाश करने के लिए।
ठामि काउस्सग्गं—कायोत्सर्ग करता हूं।

२—कायोत्सर्ग में कुदरती हाजतों के आगार

अन्नत्थ—नीचे लिखे आगारों को छोड़कर।
ऊससिएणं—(१) ऊँचा श्वास लेने से।
नीससिएणं—(२) नीचा श्वास लेने से।
खासिएणं—(३) खाँसने से।
छीएणं—(४) छींकने से।
जंभाइएणं—(५) जम्हाई लेने से।
उड्डुएणं—(६) डकार लेने से।
वायनिसग्गेणं—(७) अधोवायु निकलने से।
भमलीए—(८)चक्कर आने से।
पित्तमुच्छाए—(९) पित्त के प्रताप से आई मूर्छा से।
सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं—(१०) थोड़ा-सा अंग हिलने से।
सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं—(११) थोड़ा कफ का संचार होने से।
सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं—(१२) थोडी दृष्टि फिरने से।
एवमाइएहिं आगारेहिं—इत्यादि आगारों के कारण।
अभग्गो अविराहिओ हुज्ज— मेरा कायोत्सर्ग भंग न हो।
मे काउसग्गो—मेरा कायोत्सर्ग विराधित न हो।

३—यह कायोत्सर्ग कब तक करना चाहिए?

जाव अरिहन्ताणं भगवन्ताणं—जब तक अरिहन्त भगवान् को।

नमोक्कारेणं—नमस्कार करके।

न पारेमि ताव—(कायोत्सर्ग) न पारूँ तव तक।

४—कायोत्सर्ग किस तरह करना चाहिए ?

कायं—शरीर को।

ठाणेणं—स्थिर करके।

मोणेणं—मौन रखकर।

झाणेणं—ध्यान धारण करके।

अप्पाणं वोसिरामि—अपनी आत्मा को (कषाय आदि से) दूर करता हूँ।

पद्यानुवाद

पाप-मग्न निज आतम तत्त्व को विमल बनाने,
प्रांयश्चित्त ग्रहण कर अन्तर ज्ञान-ज्योति जगाने।
पूर्ण शुद्धि के हेतु समुज्ज्वल ध्यान लगाने,
शल्य-रहित हो पाप-कर्म का द्वन्द्व मिटाने।
राग-द्वेष-संकल्प तज, कर समता-रस पान,
स्थिर हो कायोत्सर्ग का करूँ पवित्र विधान।

आगारसूत्र

नाथ पामर जीव है यह, भ्रान्ति का भंडार,
अस्तु कायोत्सर्ग में कुछ, प्राप्त हैं आगार।

श्वास ऊँचा श्वास नीचा, छींक अथवा काश,
जृम्भणा, उद्‌गार वातोत्सर्ग, भ्रम मतिनाश ।
पित्तमूर्छा और हलका अंग का संचार,
श्लेष्म का औ दृष्टि का यदि सूक्ष्म हो प्रविचार ।
अन्य भी कारण तथाविध हैं अनेक प्रकार,
चंचलाकृति देह जिनसे शीघ्र हो सविकार ।
भाव कायोत्सर्ग मम हो, पर अखंड अभेद्य,
भावना-पथ है सुरक्षित देह ही है भेद्य ।
जाव कायोत्सर्ग, पढ़ नवकार ना लूं पार ।
ताव स्थान, सुमौन से स्थित ध्यान की झनकार ।
देह का सब भान भूलूँ, साधना इक तार,
आत्म-जीवन से हटाऊँ, पाप का व्यापार ।

पाठ नौवाँ

स्तुति का प्रयोजन

सफल स्तुति समभाव से, स्तुति योग्य जिनेश ।
स्तुति से गुण-गण वढें, इससे करो हमेश ।।

प्यारे विद्यार्थियों ! दूसरे के गुणों को देखकर जैसे उसे नमस्कार करने की इच्छा होती है उसी तरह उसके गुणों की स्तुति करने की भी इच्छा होती है । जैसे हम वीतराग देव को

नमस्कार करते हैं और वीतराग के मार्ग पर चलने वाले गुरुओं को वन्दना करते हैं, उसी प्रकार स्तुति भी उन्हीं की करनी चाहिए। इसीलिए सामायिक का पांचवाँ पाठ स्तुति का आता है। स्तुति एक प्रकार की प्रार्थना ही है।

प्रश्न—पाँचवें पाठ में किसकी स्तुति है ?

उत्तर—उसमें इस क्षेत्र में हुए चौवीस तीर्थंकरों की स्तुति है। उनके नाम पहले पढ़ चुके हो।

प्रश्न—स्तुति करने से क्या लाभ है ?

उत्तर—ज्ञानी और गुणीजनों की स्तुति करने से हम भी गुणी बन सकते हैं।

प्रश्न—तो फिर ज्ञानीजनों की स्तुति ही किया करें। दूसरी साधना या उपासना की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—ज्ञानीजनों की स्तुति करना भी मामूली काम नहीं है, जिनवरों की स्तुति करनेवाला अगर पात्र न बना तो सिर्फ तोतारटन्त से कोई लाभ नहीं होता।

प्रश्न—भगवान् की स्तुति के लिए पात्र कौन कहलाता है ?

उत्तर—जिसके हृदय में समभाव हो वही सच्चा पात्र है। और समभाव लाने के लिए साधना की आवश्यकता है। यह स्तुति भी समभाव को सिद्ध करने के लिए ही है।

प्रश्न—समभाव पा लेने के बाद तो कुछ नहीं करना पड़ता ?

उत्तर—फिर भी संयम तो रखना ही पड़ता है।

प्रश्न—भगवान् की स्तुति से संयम नहीं प्राप्त होता ?

उत्तर—नहीं, भगवान् या ज्ञानी स्वयं कुछ नहीं देते। इसके सिवाय संयम लेने-देने की चीज़ भी नहीं है। फिर भी माँगने का प्रयोजन इतना ही है कि अपनी आत्मा को इससे प्रेरणा मिलती है। 'लोगस्स' के पाठ में तीर्थंकरों की स्तुति करने के बाद, उनसे सम्यग्ज्ञान देने की और सिद्धिस्थान बतलाने की माँग भी इसीलिये की गई है। असल में तो अपने ही प्रयत्न द्वारा ज्ञान और संयम प्राप्त किया जा सकता है।

पाठ दसवां

लोगस्स का पाठ

लोगस्स उज्जोयगरे धम्मतित्थयरे जिणे ।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली ॥१॥
उसभमजियं च वन्दे संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीयलसिज्जंसवासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं च जिणं धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च ।
वंदामि रिट्ठनेमिं पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥

एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसंपि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥
कित्तियवंदियमहिया जे ये लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्गबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु ॥६॥
चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

लोगस्स उज्जोयगरे—लोग में प्रकाश करने वाले।

धम्मतित्थयरे—धर्मरूपी तीर्थ की स्थापना करने वाले।

जिणे—राग—द्वेष को जीतने वाले।

अरिहन्ते कित्तइस्सं—कर्मरूपी शत्रुओं को नष्ट करने वाले अरिहन्तों की मैं स्तुति करता हूँ।

चउवीसंपि केवली—चौबीसों केवलज्ञानी भगवानों की। ॥१॥

उसभमजिअं च वंदे—श्री ऋषभदेव और श्री अजितनाथ को वन्दना करता हूँ।

संभवमभिणंदणं च—श्री संभवनाथ, श्री अभिनन्दननाथ तथा

सुमइं च—श्री सुमतिनाथ को और

पउमप्पहं सुपासं—श्री पद्मप्रभु तथा श्रीसुपार्श्वनाथ को।

जिणं च चंदप्पहं वंदे—राग—द्वेष को जीतने वाले श्रीचंद्रप्रभु को भी नमस्कार करता हूँ। ॥२॥

सुविहिं च पुप्फदंतं-श्रीसुविधिनाथ को, जिनका दूसरा नाम पुष्पदन्त है

सीअल–सिज्जंस–वासुपुज्जं-च–श्रीशीतलनाथ, श्रीश्रेयांसनाथ और श्रीवासुपूज्य स्वामी को

विमलमणंतं च जिणं-श्रीविमलनाथ को तथा जिनवर श्रीअनन्तनाथको

धम्मं संतिं च वन्दामि–श्रीधर्मनाथ को और श्रीशांतिनाथ को मैं वन्दना करता हूँ। ॥३॥

कुन्थुं अरं च मल्लि–श्रीकुन्थुनाथ को, श्रीअरनाथ को तथा श्रीमल्लिनाथ को।

वन्दे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च–श्रीमुनिसुव्रतनाथ को तथा जिनवर श्रीनमिनाथ को मैं वन्दना करता हूँ।

वन्दामि रिट्ठनेमिं–श्रीअरिष्टनेमि को मैं वन्दना करता हूँ।

पासं तह वद्धमाणं च-श्रीपार्श्वनाथ और श्रीवर्धमान स्वामी को ॥४॥

एवं मए अभियुआ–इस प्रकार मेरे द्वारा स्तुति किये हुये।

विहुयरयमला–कर्मरूप रज–मैल धो डालने वाले,

पहीणजरमरणा–जरा और मरण का नाश करने वाले,

चउवीसं पि जिणवरा–चौबीसों जिनवर

तित्थयरा मे पसीयंतु–तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हों। ॥५॥

कित्तिय-वन्दिय-महिया–(नरेन्द्रों और देवेन्द्रों द्वारा) जिनका कीर्तन वन्दन और पूजन किया गया है,

श्रीशान्ति कुन्थु तथैव अर मल्ली नशाए कर्म जी :
भगवान् मुनिसुव्रत गुणी नमि नेमि पार्श्व जिनेश को,
वर वन्दना है भक्ति से श्रीवीर धर्म-दिनेश को।
हो कर्म-मलविरहित जरा-मरणादि सब क्षय कर दिए,
चौबीस तीर्थंकर जिनेन्द्र कृपालु हो गुणस्तुति किए।
कीर्तित महित वंदित सदा ही सिद्ध जो हैं लोक में,
आरोग्य, बोधि, समाधि उत्तम दें, न आएँ शोक में।
राकेश से निर्मल अधिक उज्ज्वल अधिक दिवसेश से,
व्यामोह कुछ भी है नहीं, गंभीर सिन्धु जलेश से।
संसार की मधु-वासना अन्तर्हृदय में कुछ नहीं,
श्रीसिद्ध ! तुमसी सिद्धि मुझ को भी मिले आशा यही।

—उपाध्याय अमरचन्द्रजी महाराज

—०००—

पाठ बारहवाँ

सामायिक की प्रतिज्ञा

(अध्यापिकाबाई और जैनशाला की बालिकाएँ)

अध्यापिका—मणिबाई, कान्ताबाई और फूलकुँवरबाई, आओ। आज तुम्हें सामायिक का छट्ठा पाठ सिखलाना है।

मणिबाई–बाईजी, यह पाठ किस विषय का है ?

अध्यापिका–यह पाठ देव या गुरु की आज्ञा मांगकर; सामायिक करने की प्रतिज्ञा लेने का है।

कान्ताबाई–सामायिक लेने के लिए भी प्रतिज्ञा लेना जरूरी है ?

अध्यापिका—घोड़ा ऊधमी होता है तो उसे लगाम लगानी पड़ती है न ? इसी तरह मन को काबू में रखने के लिए प्रतिज्ञा रूपी लगाम की जरूरत है। प्रतिज्ञा न ले तो मन के ऊपर किसी तरह का अंकुश न रहे।

फूलकुँवर–सामायिक की आज्ञा लेने की क्या आवश्यकता है ?

अध्यापिका–किसी समर्थ पुरुष की आज्ञा लेकर कोई व्रत या प्रतिज्ञा लें तो मन ढीला होने से रुकता है। उस व्रत या प्रतिज्ञा का उत्साह से पालन करने में मन मजबूत रहता है। इस तरह आज्ञा मिलने पर अपने को प्रेरणा मिलती है। हाँ यह याद रखना कि श्रावक के बारह व्रतों में सामायिक नौवाँ व्रत है।

अगर अपने सामने साधुजी या साध्वीजी हों तो प्रतिज्ञा लेने से पहले 'तिक्खुत्तो' के पाठ से, तीन बार, वन्दना करके, उनकी आज्ञा लेनी चाहिए। यदि साधु-साध्वी न हों तो ईशान कोण में तिक्खुत्तो के पाठ से, तीन बार वन्दना करके, सीमंधर स्वामी की आज्ञा लेनी चाहिए।

सुशीला–पर बाईजी, प्रतिज्ञा किस बात की ली जाती है ?

अध्यापिका—प्रतिज्ञा यह की जाती है कि 'दो घडी तक या इससे भी ज्यादा, जब तक मैं सामायिक न पार लूं तब तक, मन में पाप-कार्य का विचार नहीं करूँगा, वचन से पापकारी वाणी नहीं बोलूंगा, और काय से कोई पाप-कार्य नहीं करूँगा और इसी तरह, मन, वचन अथवा काया से मैं दूसरे से पाप-कार्य नहीं कराऊँगा।'

इस तरह दो करण और तीन योग से जो प्रतिज्ञा ली जाती है वह 'छह कोटी से पच्चक्खाण' लेना कहलाता है।

ललिताबाई—करण और योग किस को कहते हैं? आप समझायँगी?

अध्यापिका—हाँ हाँ, अवश्य। अच्छा किया सो पूछ लिया। सुनो। योग तीन हैं—मन, वचन और काया। करण भी तीन हैं-करना कराना और करते हुए को भला जानना-अनुमोदन करना। हर एक प्रवृत्ति नौ तरह से कर सकते हैं। वह इस प्रकार—

३ १-मनसे करना, कराना और अनुमोदना देना।

३ २-वचन से करना, कराना और अनुमोदना देना।

३ ३-काय से करना, कराना और अनुमोदना देना।

इस प्रकार तीन योग और तीन करण के द्वारा नौ प्रकार से पाप किया जा सकता है। इसे 'नवकोटी' कहते हैं।

इन नौ कोटियों में से हम लोग छह कोटी से पाप नहीं करने की प्रतिज्ञा लेते हैं। कोई-कोई लोग 'वचन से और काय से पाप-प्रवृत्तियों की अनुमोदना नहीं करने की भी प्रतिज्ञा लेते हैं।

इस प्रकार वे लोग *आठ कोटी से पाप का प्रत्याख्यान (त्याग) करते हैं।

कान्ताबाई–बाईजी, पापकारी प्रवृत्ति का अर्थ क्या है!

अध्यापिका–मन से खराब विचार करना, वाणी से झूठ बोलना, दूसरे को दुःख उपजाने वाले वचन कहना, शरीर से बुरे काम करना या दूसरे को कष्ट पहुँचाने वाले काम करना, यह सब काम पापकारी हैं। सामायिक में ऐसा कोई भी काम नहीं किया जाता। सामायिक में प्रभु का स्मरण, चिन्तन, धर्म-ग्रन्थों को पढ़ना या सुनना वगैरह धार्मिक क्रिया के सिवाय और कुछ भी नहीं किया जा सकता।

सुशीला–कितनी देर तक ऐसा करना चाहिए?

अध्यापिका–देखो, सामायिक का समय दो घडी अर्थात् ४८ मिनिट का है। लेकिन ४८ मिनिट के बाद भी, जब तक सामायिक न पार लो तब तक, इसी तरह रहना चाहिए। दो सामायिक की हो तो चार घडी तक, तीन सामायिक की हो तो छह घडी तक, इस प्रकार जितनी सामायिकें की हों, उनका दो घडी के हिसाब से समय पूरा होने तक के लिए यह प्रतिज्ञा है। सामायिक का समय पूरा हुवा या नहीं, यह जानने के लिए रेत की एक घडी आती है। जिसके पास घडी न हो या जिसे घडी देखना न आता हो, उसके लिए वह रेत की घडी को काम में ला सकता है

गुरु या जिनकी साख से, सामायिक ली जाय,
तीन योग दो करण से, तनिक न पाप कराय।

---

*गुजरात में दरियापुरी संप्रदाय के श्रावक तथा कच्छ में आठ कोटी मोटी पक्ष व नानी पक्ष के श्रावक आठ कोटी से त्याग करने में मानते हैं।

पाठ तेरहवाँ

प्रतिज्ञा-सूत्र

(द्रव्य से सावद्य योग (पापमय प्रवृत्ति) के सेवन करने का त्याग, क्षेत्र से सारे लोक प्रमाण (वे पाप सारे लोक में न करना), काल से दो घड़ी के उपरांत जब तक पारूँ नहीं तब तक, भाव से छह कोटि से पच्चक्खाण (पाप का त्याग) करता हूँ ।

करेमि भंते! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावनियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥ १ ॥

करेमि–करता हूँ ।
भंते–भगवन् (हे पूज्य?
सामाइयं–सामायिक को ।
सावज्जं जोगं–पापकारी योग अर्थात् मन, वचन और काय की पापमयी प्रवृत्तियों को
पच्चक्खामि– त्यागता हूँ ।
जाव नियमं– जब तक मर्यादा बाँधी है तब तक ।
पज्जुवासामि–मैं (इस व्रत का) सेवन करूँगा ।

किस तरह यह व्रत लेता हूँ ?

दुविहं, तिविहेणं—दो करण, तीन योगों से ।
न करेमि, न कारवेमि—सावद्य कार्य स्वयं नहीं करूंगा और
दूसरों से नहीं कराऊंगा ।
मणसा, वयसा, कायसा—मन, वचन और काया से
तस्स भंते !—हे पूज्य ! पाप-रूप व्यापारों को ।
पडिक्कमामि—त्यागता हूँ ।
निन्दामि, गरिहामि— निंदा करता हूँ, धिक्कारता हूँ ।
अप्पाणं— अशुभ प्रवृत्तियों में पडे हुए आत्मा को उनसे,
वोसिरामि—अलग करता हूँ ।

पद्यानुवाद

भगवन् ! सामायिक करता हूँ समभाव,
पाप रूप व्यापारों की कल्पना हटाता हूँ ।
यावत नियम धर्मध्यान की उपासना है,
युगल करण तीन योग से निभाता हूँ ॥
पापकारी कर्म मन, वच और तन द्वारा,
स्वयं न करता हूँ और न कराता हूँ ।
करके प्रतिक्रमण निन्दा तथा गर्हणा मैं,
पापात्मा को वोसिरा के विशुद्ध बनाता हूँ ॥

—०००—

पाठ चौदहवाँ

स्तुति

सामायिक का छट्ठा पाठ सामायिक लेने का है। देव या गुरु की आज्ञा लेने के बाद, खड़े होकर, छट्ठा पाठ बोला और तुम सामायिक-समताभाव रखने की प्रतिज्ञा से बँध गये। अब इस प्रतिज्ञा को पालने के लिए मन को काम तो मिलना चाहिए। वाणी और शरीर तो सरलता से अपने वश में हो सकते हैं, मगर मन बहुत चंचल है। जहाँ कोई नहीं पहुँच पाता वहाँ भी मन पहुँच जाता है। इसको काबू में रखना बड़ा कठिन काम है। यह इतना हठीला है कि बड़े-बड़े मुनिराज भी इससे कभी-कभी हार मान जाते हैं।

मन को वश में करने के लिए भगवान् की और गुरु की कृपा की आवश्यकता है। यह बात पिछले पाठों में बतलाई जा चुकी है। यहाँ सिद्ध हुए जिनवरों के गुणों का वर्णन है और वे जिस सिद्ध-क्षेत्र में बसते हैं, उस क्षेत्र का भी वर्णन किया गया है। सिद्ध भगवान् के गुण अलौकिक हैं, अद्भुत् हैं, बार-बार चिन्तन करने योग्य हैं।

सिद्धगति पाना अपना ध्येय है। सामायिक इसी ध्येय तक पहुँचाने की एक क्रिया है ध्येय को पाने की इस क्रिया के समय बराबर ध्यान रहे, इसलिए सामायिक लेने की पूरी विधि हो जाने के बाद यह पाठ रक्खा गया है।

सिद्ध भगवान् के मुख्य आठ गुण हैं। इस पाठ में जो गुण बतलाये गये हैं ये इन आठ गुणों के विस्तार रूप ही हैं। सिद्ध

भगवान् का हम सभी पर अनन्त उपकार है : यह बात हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।

सिद्ध भगवान् जिस स्थान में विराजमान रहते हैं, वह स्थान 'सिद्धशिला' अथवा सिद्धक्षेत्र कहलाता है। वहाँ रोग नहीं है, शोक नहीं है, दुःख नहीं है, भूख नहीं है, मोह नहीं है, माया नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्त शक्ति है। ऐसे स्थान पर पहुँच जानेपर अर्थात् सिद्ध हो जाने पर न कभी जनमना पड़ता है, न मरना पड़ता है। अजर अमर बन जाते हैं।

जो सिद्धक्षेत्र में पहुँच गये हैं ऐसे सिद्ध भगवान् और जो वहाँ पहुँचने वाले हैं ऐसे अरिहन्त भगवान् की स्तुति 'नमोत्थुणं' के पाठ से की जाती है। इस प्रकार 'नमोत्थुणं' पाठ दो बार बोला जाता है। एक बार सिद्ध भगवान् की स्तुति के लिए और दूसरी बार अरिहन्त भगवान् की स्तुति के लिए। जब सिद्ध भगवान् के लिए पाठ बोला जाता है तब 'ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जियभयाणं' ऐसा कहा जाता है। उसके बाद जब अरिहन्त भगवान् के लिए यह पाठ बोला जाता है तब ठाणं संपत्ताणं की जगह 'ठाणं संपाविउकामाणं' बोला जाता है। इसके अतिरिक्त सारी स्तुति दोनों के लिए समान है।

'नमोत्थुणं का उच्चारण तो बहुत जल्दी पूरा हो जाता है पर उसका चिन्तन सामायिक का समय पूरा होने तक चालू रखना चाहिए। जैसे सूरज उगने से अंधकार मिट जाता है, उसी प्रकार इस पाठ का चिन्तन करने से पापों का नाश हो जाता है।

सिद्ध और अरिहन्त के, गुण में रखकर प्रीति,
मन रखो समभाव में, नमन सहित यह रीति।
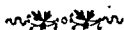
पाठ पन्द्रहवाँ

'नमोत्थु णं' का पाठ

नमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं, आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरियाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोयगराणं अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसियाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंत-चक्कवट्टीणं दीवो-ताणं सरणगइपइट्ठाणं अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं मोयगाणं सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं, सिवमयलमरुअ-मणंत मक्खय--मव्वाबाहमपुणरावित्ति--सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जिअभयाणं।

नमोत्थु णं—नमस्कार हो।

अरिहन्ताणं—अरिहन्तों को।

भगवंताणं—भगवंतो को।

आइगराणं—धर्म की आदि करने वाले अर्थात् स्थापना करने वाले

तित्थयराणं—चार तीर्थ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) की स्थापना करने वाले

सयं संबुद्धाणं—स्वयं अपने-आप बोध को प्राप्त करने वाले

पुरिसुत्तमाणं—पुरुषों में उत्तम

पुरिससीहाणं—पुरुषों में सिंहसमान

पुरिसवरपुंडरियाणं—पुरुषों में प्रधान पुंडरीक कमल के समान

पुरिसवरगंधहत्थीणं—हाथियों में जैसे गंधहस्ती श्रेष्ठ है वैसे ही पुरुषों में श्रेष्ठ

लोगुत्तमाणं—तीनों लोकों में उत्तम

लोगनाहाणं—तीनों लोकों के नाथ

लोगहियाणं—तीनों लोकों का हित करने वाले

लोगपईवाणं—लोक में दीपक के समान

लोगपज्जोयगराणं—लोक में प्रकाश करने वाले

अभयदयाणं—अभय देने वाले

चक्खुदयाणं—ज्ञान रूप चक्षु (नेत्र) देनेवाले

मग्गदयाणं—मोक्ष मार्ग देने वाले-बताने वाले

सरणदयाणं—शरण देने वाले

जीवदयाणं—संयम रूप जीवन देने वाले

बोहिदयाणं-बोधि (सम्यक्त्व) देने वाले
धम्मदयाणं-धर्म के दाता
धम्मदेसियाणं-धर्म के उपदेशक
धम्मनायगाणं-धर्म के नायक
धम्मसारहीणं-धर्मरूपी रथ के सारथी
धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं-चार गतियों का अंत करने में श्रेष्ठ धर्मचक्रवर्त्ती
दीवो-ताणं-(संसारसागरमें पडे जीवों के) द्वीप के समान रक्षक
सरणगइपइट्ठाणं-संसारी जीवों के शरण रूप, गति रूप, आधारभूत
अप्पडिहयवरनाण-अप्रतिहत (बेरोक) उत्तम केवल ज्ञान
दंसणधराणं-दर्शन के धारक
वियट्टछउमाणं-छद्मस्थ-अवस्था से रहित
जिणाणं-राग-द्वेप को जीतने वाले
जावयाणं-दूसरों को जिताने वाले
तिन्नाणं-तारयाणं-भवसागर से तरने वाले, दूसरों को तारने वाले
बुद्धाणं-ज्ञान को प्राप्त
बोहयाणं-दूसरों को बोध देने वाले
मुत्ताणं-(कर्म बंधन से) मुक्त
मोयगाणं-दूसरों को मुक्त कराने वाले
सव्वन्नूणं, सव्वदरिसीणं-सर्वज्ञ, सर्वदर्शी
सिवं अयलं-उपद्रवों से रहित, अचल
अरुयं, अणन्तं-रोग रहित, अनन्त

अक्खयं-(अक्षय) क्षय से रहित

अव्वाबाहं—व्याधि-पीड़ा से रहित

अपुणरावित्ति—जहाँ से फिर लौटना नहीं पड़ता ऐसे

सिद्धिगइनामधेयं—सिद्धिगति,-मोक्षगति-नामक

ठाणं, संपत्ताणं—स्थान को, प्राप्त हुए

नमो जिणाणं—श्रीजिन (सिद्ध) भगवान् को नमस्कार हो

जिअभयाणं—जिन्होंने भय को जीत लिया है

पाठ सोलहवाँ

'नमोत्थु णं' का पद्यानुवाद

अ-सि-आ-उ-साय नमः

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः

अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुओं को नमस्कार।

नमस्कार हो वीतराग अर्हन्त भगवान् को,
आदि धर्म के कर्त्ता श्री तीर्थंकर जिन को।
स्वयं बुद्ध है, भूतल के पुरुषों में उत्तम,
पुरुषसिंह है, पुरुषों में अरविन्द महत्तम।
पुरुषों में हैं, श्रेष्ठ गंधहस्ती-से स्वामी,
लोकोत्तम हैं, लोकनाथ हैं, जगहित-कामी।
लोक-प्रदीपक हैं अति उज्ज्वल लोक-प्रकाशक,

अभयदान के दाता, अन्तर-चक्षु-विकासक।
मार्ग, शरण सद्बोधि, धर्म-जीवन के दाता,
सत्य धर्म के उपदेशक, अधिनायक त्राता।
धर्म-प्रवर्तक धर्म-चक्रवर्ती जग जेता,
द्वीप-त्राण-गति-शरण-प्रतिष्ठामय शिवनेता।
श्रेष्ठ तथा अनिरुद्ध ज्ञान-दर्शन के धारी,
छद्मरहित अज्ञान भ्रान्ति की सत्ता टारी।
राग-द्वेष के जेता और जिताने वाले,
भव-सागर से तीर्ण तथैव तिराने वाले।
स्वयंबुद्ध हो बोध भव्य जीवों को दीना,
मुक्त और मोचक का पद भी उत्तम लीना।
लोकालोक-प्रकाशी अविचल केवलज्ञानी,
केवलदर्शी परम अहिंसक शुक्लध्यानी।
मंगलमय अविचंचल शून्य सकल रोगों से,
अक्षय और अनन्त, रहित बाधा-योगों से।
एक बार जा वहां, न फिर जग में आये हैं,
सर्वोत्तम वह स्थान मोक्ष का अपनाए हैं,।
(*एक बार जा वहां, न फिर जग में आना है,
सर्वोत्तम वह स्थान मोक्ष का अपनाना है।)
नमस्कार हो श्रीजिन अन्तर-रिपु-जयकारी,
अखिल भयों को जीत पूर्ण निर्भयता-धारी।

*कोष्टक के अन्दर का पाठ अरिहन्तों के लिए है।

पाठ सत्तरहवाँ

सामायिक पारने की विधि

समय पूर्ण होने पर पारो सामायिक व्रत ज्ञान।
व्रत में लगे दोष जो टारो, करने पूर्ण प्रयास ॥

(अध्यापिका बाई और दूसरी बालकाएँ)

बालिकाएँ–बाईजी ! अब तो हमें सामायिक का आठवाँ पाठ सिखलाओगी न ?

अध्यापिका–हाँ। तुमने सात पाठ पक्के कर लिये हैं, इस-लिए अब आगे का पाठ सिखलाऊँगी। मगर उस पाठ को सीखने से पहले उसका मतलब समझ लेना चाहिए। इस अगले पाठ को 'सामायिक पारने का पाठ' कहते हैं। सामायिक लेते समय जितना समय निश्चित किया हो, वह समय जब पूरा हो जाता है, तो सामायिक पूरी होती है। मगर सामायिक के समय हमने जिन पाप-प्रवृत्तियों को नहीं करने की प्रतिज्ञा ली थी, उस प्रतिज्ञा का जान में या अनजान में भंग हो गया हो, कोई भूल हो गई हो तो दोष लगता है। उन दोषों की आलोचना करके, माफी मांगने के लिए यह पाठ बोला जाता है।

सुशीला–बाईजी ! सामायिक लेने से पहले ही ऐसा किया जाता है। फिर दूसरी बार ऐसा करनेकी क्या आवश्यकता है ?

अध्यापिका—तुम ठीक कहती हो सुशीला, मगर वह सामायिक से पहले लगे हुए पापों के लिए था और यह सामायिक के समय लगे हुए पापों के लिए है।

कमला—मगर सामायिक तो स्वयं ही पाप-रहित है न?

अध्यापिका—ठीक है; इसीलिये सामायिक को संवर क्रिया कहते हैं। खरी सामायिक तो 'पूणिया श्रावक' जैसे किसी-किसी की ही होती है।

कुमुद—सामायिक में कौन-से दोष लगते हैं।

अध्यापिका—ये सब बातें पाठ में आती हैं। पाठ पढ़ते समय तुम विस्तार के साथ उन्हें समझ जाओगी।

पाठ में सबसे पहले पाँच अतिचार आते हैं। उसके बाद मन के दस, वचन के दस और काय के बारह। इस तरह कुल बत्तीस दोषों, की बात आती है। फिर चार विकथा की बात आती है। इसके अनन्तर चार संज्ञाकी, चार दूषणों की, विधि को भंग करने के दोष की और अन्त में अशुद्ध उच्चारण करने से लगे हुए दोषों की बात आती है। उच्चारण की शुद्धता पर इसीलिए अधिक ध्यान दिया जाता है कि अशुध्द उच्चारण करने से दोष लगता है।

बालिकाओ! तुम नयी-नयी बातें जानना चाहती हो। यह देखकर मुझे बहुत आनन्द होता है।

सुशीला—बाईजी! यह पाठ सीख लेने पर हम भी सामायिक करेंगी। फिर तो सामायिक करनेकी आज्ञा दोगी न?

अध्यापिका-हाँ हाँ, जरूर। यह पाठ सीख लोगी तब तुम्हें सामायिक लेने की विधि बतलाऊँगी। फिर तुम रोज सामायिक कर सकोगी। सामायिक करते समय तुम अपना धार्मिक अभ्यास भी कर सकोगी। आज इन बातों को ध्यान में रखना। कल 'सामायिक पारने का पाठ' सिखलाया जायगा।
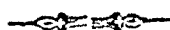
पाठ अठारहवाँ

सामायिक पारने का पाठ

१ एयस्स नवमस्स सामाइयिवयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं, मणदुप्पणिहाणे वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे सामाइयस्स सइ अकरणया सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

२ सामाइयं सम्मं काएणं, न फासिअं, न पालिअं न तीरिअं न कित्तिअं न सोहिअं न आराहियं, आणाए अणुपालिअं न भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

१-एयस्स नवमस्स-इस (बारह व्रतों में से) नौवें

सामाइयवयस्स-सामायिक व्रत के

पंच अइयारा-पांच अतिचार

जाणियव्वा—जानने चाहिए

न समायरियव्वा—सेवन नहीं करना चाहिए

तंजहा—वे इस प्रकार हैं

मणदुप्पणिहाणे—मन खराब विचारों में लगाना

वयदुप्पणिहाणे—मुँह से खराब वचन बोलना

कायदुप्पणिहाणे—काया से अयोग्य कार्य करना

सामाइयस्स सइ अकरणया—सामायिक की स्मृति न रखना

सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया—सामायिक ठीक तरह न करना

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं—उसका (इन अतिचारों द्वारा लगा हुआ) दोष मिथ्या हो।

२—सामाइअं—सामायिक व्रत को

सम्मं, काएणं—अच्छी तरह, काया से

न फासियं—न स्पर्श हो

न पालियं—न पाला हो

न तीरियं—न पार उतारा हो

न किट्टियं—न कीर्तन किया हो

न सोहियं—न शुद्ध किया हो

आराहियं—न आराधन किया हो

आणाए अणुपालियं न हवइ—(वीतराग की) आज्ञा के अनुसार पालन न किया हो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं—उस संबन्धी मेरा पाप मिथ्या हो।

३—सामायिक में दस मन के, दस वचन के और बारह काया के

सब मिलकर बत्तीस दोषों में से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

४—सामायिक में स्त्री कथा, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा, इन चार विकथाओं में से कोई विकथा की हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

५—सामायिक में आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा इन चार संज्ञाओं में से किसी संज्ञा का सेवन किया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

६—सामायिक में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, जानते अनजानते, मन, वचन, काया से दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

७—सामायिक व्रत विधि से लिया, विधि से पारा, फिर भी अविधि हो गई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

८—सामायिक में काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, गाथा, सूत्र कम-ज्यादा या विपरीत बोला गया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

पद्यानुवाद

सामायिक व्रत का समग्र काल पूरा हुआ,
भूल-चूक जो भी हुई आलोचना करूँ मैं
मन, वच, तन बुरे मार्ग में प्रवृत्त हुए,
अन्तरंग शुद्धि की विभंगता से डरूँ मैं ॥

स्मृति-भ्रंश तथा व्यवस्थितिहीनता के दोष,
पश्चात्ताप कर पाप-कालिमा से टरूँ मैं ।
अखिल दुरित मम शीघ्र ही विफल होवे,
अतल असीम भव–सागर से तरूँ मैं ।
सामायिक भलीभांति उतारी न अन्तर में,
स्पर्शन, पालन, यथाविधि पूर्ण की नहीं ।
वीतराग–वचनों के अनुसार कीर्तना की,
शुद्धि की,आराधना की दिव्य ज्योति ली नहीं ।।
संसार की ज्वालाओं से पिपासित हृदय ने,
शांतिभूत समभावना की सुधा पी नहीं ।
आलोचना अनुताप करता हूँ वार–वार
साधना में क्यों न सावधान वृत्ति दी नहीं ।।

पाठ उन्नीसवाँ

सामायिक व्रत की विधि

समायिक के साधन

१—बैठने के लिए शुद्ध सूती या ऊनी आसन
२—पहनने और ओढ़ने के लिए दो सफेद वस्त्र, जो शुद्ध खादी के हों तो अति उत्तम है ।
३—मुँह पर बाँधने के लिए शुद्ध खादी की सफेद मुखवस्त्रिका

४—नमोकारमंत्र जपने के लिए माला।
५—मन को स्थिर रखने क लिए अनानुपूर्वी।
६—जीवों की रक्षा के लिए देशी ऊनी की पूंजणी अथवा रजोहरण
७—पढ़ने के लिए धार्मिक पुस्तकें और उन्हें संभालने के लिए घोडी

सामायिक लेने की विधि

सामायिक के ऊपर वतलाए हुए वस्त्र पहनकर, रजोहरण या पूंजणी से अच्छी तरह ध्यान पूंजकर आसन विछाना चाहिए। फिर मुखवस्त्रिका बाँधकर, आसन पर खडे होकर क्रमवार नीचे लिखे अनुसार पाठ वोलने चाहिए:—

१—नमस्कारमंत्र का पाठ, तिक्खुत्तो का पाठ, इच्छामि पडिक्कमिउं का पाठ, तस्स उत्तरी का पाठ

२—इसक वाद खडे होकर अथवा आसनपर पालथी मारकर ध्यान की मुद्रा में वैठकर 'इच्छामि पडिक्कमिउं' के पाठ का कायोत्सर्ग करना चाहिए और पाठ पूरा होने पर नमस्कारमंत्र पढ़कर कायोत्सर्ग पारना चाहिए।

३—'ध्यान में मन चला हो, वचन चला हो या काया चली हो तो 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं,' कायोत्सर्ग में आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याये हों, धर्म और शुक्लध्यान न ध्याये हों तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।' ऐसा वोलना चाहिए।

४—चौवीस तीर्थंकरों की स्तुति का पाँचवा पाठ वोलना चाहिए।

५—तिक्खुत्तो के पाठ से तीन वार वन्दना करके, गुरु महाराज से सामायिक करने की आज्ञा लेनी चाहिए। गुरु

महाराज मौजूद न हों तो ईशान कोण की तरफ, तीन वार श्रीसीमन्धर स्वामी को वंदना करके उनकी आज्ञा लेनी चाहिए

६-फिर सामायिक लेने का छट्ठा पाठ खड़े होकर बोलना चाहिए।

७-बाँया पैर ऊँचा रखकर, दाहिना पैर दबाकर बैठना और तीन नमोत्थु णं बोलना।

८-तीन नमस्कारमन्त्र के कायोत्सर्ग करना।

सामायिक के समय में

१—मालाफेरी जा सकती है; अनानुपूर्वी गुनी जा सकती है
२—धार्मिक पुस्तकें पढी जा सकती हैं।
३—धार्मिक ग्रंथ सुने जा सकते हैं।
४—प्रभु प्रार्थना, स्तवन और सज्झाय किया जा सकता है।
५—ध्यान आदि अन्य धार्मिक प्रवृत्तियाँ की जा सकती हैं।

एक सामायिक का समय दो घडी (४८मिनिट) गिना जाता है।

सामायिक पारने की विधि

१—सामायिक का समय (कम से कम दोघडी) पूरा होने पर ऊपर लिखे अनुसार पाँचवें पाठ तक की सब क्रियाएँ करें
२—सामायिक पारने की आज्ञा नहीं ली जाती, अतःछठे पाठ के बदले सामायिक पारने की विधि का आठवाँ पाठ बोलें
३—'नमोत्थु णं' बोलना।
४—तीन नमस्कारमन्त्र का कायोत्सर्ग करना इससे सामायिक क्रिया पूर्ण हो जाती है।

पाठ बीसवाँ

बालमित्रों को छोटा-सा संदेश

मानव-जीवन सब में उत्तम जीवन है। इस सर्वोत्तम जीवन में बाल्यावस्था परम सत्त्व है। इस परम सत्त्व को पाने वाले बालको ! तुम धन्य हो। फिर तुम तो विद्यार्थी-अवस्था में हो। इस कारण पूर्ण भाग्यशाली हो। इन धन्य क्षणों में जीवन को उत्तम और सफल बनाने की योग्यता प्राप्त कर लो। यही योग्यता तुम्हारा सच्चा धन है। वही जीवन का पाथेय (भाता) है।

जीवन का भाता

जीवन का भाता अर्थात् प्रभु को प्राप्त करने का उपाय। सचमुच प्रभु को प्राप्त करने के लिए-स्वयं प्रभुरूप बनने के लिए नौ के अंक के समान बनना चाहिए। तुमने दस तक गिनती सीखी होगी। इनमें नौ का अंक सब से ऊँचा है। क्योंकि किसी भी संख्या के साथ उसका गुणा करके, उस संख्या के अंकों का जोड करो तो सदा नौ ही आएँगे। इसी प्रकार सुख-दुःख, मान-अपमान के तुफान आने पर तुम भी नौ के अंक के समान एक-से बने रहो। अडोल रहो।

आठ का आकार देखो और नौ का आकार देखो। दोनों में जरा-सा अन्तर है। नौ के अंक के बीच में एक पतली-सी रेखा ज्यादा है। मगर आठ के गुणन-फल का जोड करो तो वह बात-बात में छकता रहता है तो फिर बीच की उस रेखा

का कितना महत्त्व है ? यह रेखा और कुछ नहीं, प्रभु की तरफ दृष्टि रखने की सूचना करती है।

प्रभु की क्या आज्ञा है ?

१-प्रभु सत्य बोलने की आज्ञा देते हैं इसलिए सदा सत्य बोलो।

२-प्रभु सभी कुछ देखता है, इसलिए छोटी-सी भी चोरी मत करो। चोरी किये बिना भी अगर तुम पास होना चाहोगे तो हो ही जाओगे।

३-सब जीवधारियों में आत्मा है, अतएव किसी को मत सताओ, किसी को धोखा मत दो, किसी की नकल करके मत चिढ़ाओ, किसी को हैरान मत करो।

४-प्रभु स्वच्छता रखने की आज्ञा देते हैं, इसलिए स्वच्छ मन, स्वच्छ शरीर और स्वच्छ आँगन रक्खो॥

५-प्रभु ने प्रिय वचन बोलने को कहा है। इसलिए सब का आदर करो। सब के साथ मीठे वचन बोलकर व्यवहार करो।

६-माता, पिता, गुरु और अपंग की सेवा में ही प्रभु की सेवा है।

गाली-गलौज प्रभु की आज्ञा के विरुद्ध है,इसलिए किसी को गाली मत दो। दीवाल पर खराब शब्द मत लिखो। कोई दूसरा लिखे तो उसे प्यार के साथ समझाओ और उन्हें मिटा दो।

प्यारे विद्यार्थियों ! इस मँहगे माल को तुम अपने कोमल और स्वच्छ दिमाग में जमा कर रक्खो। तुम अपने कुटुम्ब के दीपक हो। गांव के नेता हो राष्ट्र के रत्न हो, और विश्व की

विभूति हो। तुम्हारा निर्दोष जीवन देवों को भी डाह पैदा करता है। प्रभु के पवित्र चरण चिन्हों पर चलो। अपने जीवन को धन्य बनाओ। अमर बनो और अमृत बरसाओ। सर्वत्र शांति का प्रसार हो।

हैं बालक हम सभी प्रभु के,
खरे बालक बनेंगे हम।
सदा ही बालभावों में,
जिएँगे औ मरेंगे हम॥
प्रतिक्षण व्याप्त जो संगीत,
व्योम में और भूतल पर।
संवादी साध कर स्वर हम,
मज़ा पूरा उठाएँगे॥
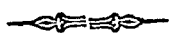
पाठ इक्कीसवाँ

आज्ञापालन

ईश्वर, गुरु अरु बड़न की, आज्ञा पालो सर्व।
सब से सीखो सीख नित, तज कर खोटा गर्व।
आज्ञा से सेवा दिये, आज्ञा में सुख-सार।
आज्ञा से गौतम गये, भव-सागर के पार॥

'आज्ञा-पालन में ही धर्म है और आज्ञा-पालन में ही तप है, ऐसा जैनशास्त्रों का वाक्य है। वीतराग देव या सद्-

गुरु-देव की आज्ञा मानने में ही धर्म और तप समा जाता है। कहो आज्ञा की कितनी महिमा है? गौतम स्वामी अपने गुरु भगवान् महावीर स्वामी की आज्ञा का पालन करने से ही संसार-सागर तर गये।

जैसे देव और गुरु की आज्ञा का पालन करना आवश्यक है उसी प्रकार अपने माता पिता, विद्यागुरु, बड़े-बूढ़े, बड़े भाई-बहिन, देश-नेता, सेठ, स्वामी आदि-जो उम्र में या गुण में अपने से बड़े हैं, उन सब की आज्ञा माननी चाहिए।

आज्ञा मानने से ही सेवा की शोभा है। मद्रास में घटी हुई एक घटना इस प्रकार है:—

रेलगाड़ियों को ठीक-ठीकाने, पटरी पर चढ़ाने का काम करने वाला एक पाइंट-मेन था। वह पाइंट के पास खड़ा था। उसी समय आमने-सामने से दो गाड़ियाँ तेजी के साथ आ रही थीं। उसी समय एक काला साँप आया और वह उस पाइंट-मेन के पैरों में लिपट गया। अगर वह घबरा कर अपने कर्त्तव्य से चूके तो दोनों गाड़ियाँ आपस में टकरा जाएँ, हजारों मनुष्य मर जाएँ या घायल हो जाएँ और घोर अनर्थ हो जाय। एक तरफ हजारों आदमियों का प्रश्न था और दूसरी तरफ साँप काट खाय तो अपनी मौत का प्रश्न था। ऐसे समय में पाइंट-मेन ने अपनी चिंता छोड़कर अपने कर्त्तव्य का ही पालन किया।

एक पाइंट-मेन जैसे साधारण नौकरी करने वाले मनुष्य ने भी अपने प्राणों की बाजी लगा कर कर्त्तव्य का पालन किया। अगर उसमें निर्भयता न होती तो वह अपने कर्त्तव्य से च्युत

हो जता। एक नौकर भी अपने मालिक का हुक्म बजाता है। एक सैनिक अपने सरदार के हुक्म के अधीन रहता है तो फिर हम भी अपने बडे--बूढों की हित--आज्ञा या शिक्षा को क्यों न पालें ? हित शिक्षा तो बडों की ही नहीं, बल्कि छोटों की भी मान लेनी चाहिए।

जो लोग हठी होते हैं और हित की बात भी नहीं मानते, उनका रावण और दुर्योधन के समान बहुत बुरा हाल होता है। घमण्डी राजा रावण ने अपनी पटरानी मन्दोदरी की और अपने सगे भाई विभीषण की हित--शिक्षा नहीं मानी। अहंकारी दुर्योधन ने अपने पिता धृतराष्ट्र का, नीतिनिपुण विदुरजी का और महात्मा श्रीकृष्ण जैसों का भी कहना नहीं माना। अन्त में रावण रामचंद्रजी के साथ लड़ाई करके मारा गया। दुर्योधन पांण्डवों के साथ युद्ध में हार कर बुरी तरह मौत से मरा।

कुछ लोग सोचते हैं कि हम किसी की आज्ञा का पालन करेंगे तो निर्बल गिने जाएँगे। ऐसा सोच कर जो निकम्मे हो जाते हैं उद्धत बन जाते हैं, वे नीचे लिखे उदाहरण से सच्ची बात समझ जाएँगे।

एक दिन एक किसान ने अपने लड़के को खेत में ले जाकर समझाया--देख, बेटा ! जिस पौधे में दाने ज्यादा हैं, वह ज्यादा झुका हुआ है और जो पौधा अकड़ा हुआ खड़ा है, उसमें भूसा ही ज्यादा है--दाने कम हैं। इसी प्रकार जिसमें गुण ज्यादा होते हैं वे मनुष्य सदा नमे हुए--विनयी होते हैं। निकम्मे लोग ही अपने प्रेमी जनों या बडों के साथ तुच्छता या उद्धतता दिखाते हैं।

इस उदाहरण से यह बात समझी जा सकती है कि आज्ञा पालन करने से निकम्मापन नहीं बढ़ता, मगर आज्ञा न पालने से निकम्मापन अवश्य प्रकट होता है।

सेवा करने वालों के लिए तो आज्ञा-पालने का गुण बहुत आवश्यक है। सेवक अपने स्वामी की सेवा करेगा मगर आज्ञा नहीं मानेगा तो वह सेवा फिजूल जायगी। हाँ! यह ठीक है कि आज्ञा अयोग्य नहीं होनी चाहिए। कोई बड़ा-बूढ़ा झूट बोलने के लिए कहे या खोटा काम करने के लिए कहे तो वह अयोग्य आज्ञा गिनी जायगी। ऐसी आज्ञा नहीं मानी जाती। ऐसे मौकेपर विनय के साथ, आज्ञा पालने में अपनी असमर्थता प्रकट की जा सकती है।

मतलब यह है कि आज्ञा देन वाले को योग्य आज्ञा ही देनी चाहिए और आज्ञा पालने वाले को योग्य आज्ञा प्राणों की बाजी लगाकर भी पालनी चाहिए।

पाठ बाईसवाँ

वीरता और क्षमा

[१]

बालक वर्धमान आगे चलकर भगवान् महावीर कैसे बन गये? उन्होंने इतनी बड़ी महिमा किस प्रकार पा ली? इन प्रश्नों पर विचार करें तो पता लगेगा कि महाक्षमावाली वीरता

के प्रताप से ही उन्हें संसार की सब से बड़ी पदवी मिली। सब धर्मों में क्षमावीरों की महिमा गाई गई है।

ईसाई धर्म के संस्थापक महात्मा ईसा ने भी क्षमा के कारण ही बड़प्पन पाया। अपने हाथों-पैरों में किले ठोंकनेवाले का भी उन्होंने भला चाहा था।

ग्रीस के तत्वज्ञानी सुकरात ने भी जहर का प्याला पिलाने वाले पर तनिक भी रोष नहीं किया था।

भोजन में काच मिला देने वाले को भी स्वामी दयानन्द ने क्षमा कर दिया था।

जैन धर्म में तो साधुओं के लिए 'क्षमा-श्रमण' शब्द का ही व्यवहार किया जाता है। और अनेक साधुओं ने इस शब्द को सार्थक कर दिखाया है।

वीर पुत्रों! तुम भगवान् महावीर की सन्तान हो। पिता महावीर के समान वीर बनना। अपनी वीरता को अच्छे कामों में ही लगाना। साथ ही क्षमा का गुण भी सीखना।

[२]

वीरता और क्षमा

वही वीरता वीरता, पहिरत आती काम।
वीर क्षमा त्यागे नहीं, जावे चाहे चाम॥

'क्षमा वीर का भूषण ह-गहना है'। यह बात तुमने बहुत बार सुनी होगी।

कहोगे। मगर ऐसा वीर अगर लुच्चों-गुन्डों का दादा बनकर अपनी वीरता से दूसरों को त्रास देता हो तो वह वीरता किस काम की? शरीर को तन्दुरुस्त और मजबूत रखना जरूरी है, लेकिन किसी को सताने के लिए नहीं, मगर सेवा करने के लिए। जो इतनी बात याद रखता है और वर्त्ताव करता है उसी को वीर कहना चाहिए। ऐसे वीरों में अगर क्षमा नहीं हुई तो वे शोभा नहीं पाएँगे। वास्तव में तो शरीर दुबला भले हो मगर नीरोग होना चाहिए। और यदि उसमें क्षमा हुई तब तो वह सचमुच वीर ही गिना जायगा।

एक बार दुनिया के दो नामी पहलवान गांधीजी से मिलने आये। जब वे गांधीजी से हाथ मिलाने लगे तो गांधीजी ने मजाक में कहा— तुम पहलवान हो और मैं हूँ मुट्ठी भर हड्डियों वाला दुबला-पतला आदमी! देखना, जरा सँभाल कर हाथ दबाना।' पहलवानों ने भी उचित ही उत्तर दिया— 'हम तो एक बार में, एकाध के शरीर को ही कँपा सकते हैं मगर आप तो ऐसे वीर हैं कि एक साथ सैकडों के हृदयों को कँपाते हैं।'

बात सच्ची है। गाँधीजी ने संसार में नाम फैलाया है। वे कर्मवीर थे, सत्यवीर भी कहलाते थे और क्षमा का आभूषण भी धारण किये हुए थे।'

एक बार अफ्रीका की लडाई में वे प्रजा को समझा रहे थे कि जब सरकार झुकी है तो हम लोगों को थोडा झुकना चाहिए। यह बात बहुतों को बुरी लगी। एक पठान तो यहाँ तक कहने लगा कि मैं तुम्हें मारे बिना नहीं छोड़ूँगा। मगर गाँधीजी इस तरह डरने वाले नहीं थे। डरते हैं कायर, वीर

को क्या डर ? गाँधीजी ने अपनी बात पर अमल किया। कुछ लोग तो चुप रहे, कुछ भला-बुरा कह शान्त हो गए। मगर उस पठान ने गांधीजी का पीछा किया और उन्हें सच-मुच मारा भी। गाँधीजी पर इतनी मार पड़ी कि वे बेहोश हो गए। पठान को आवेश और अज्ञान में कुछ भी भान न रहा। देशवासियों की, अरे! अपनी ही सेवा बजाने वाले को आप ही मारा!

यह सभी को खटकने वाली घटना थी। लोग कहते थे-मुकद्दमा चलाना चाहिए। पर गाँधीजी को तो कुछ और ही करना था। जब वे होश में आये तो तुरंत बोले-भाई आलम-खान कहाँ है ? उसे न कुछ कहना, न करना। उसने तो आवेश और अज्ञान के वश होकर यह काम किया है। इसमें उसका क्या दोष है।

इसे कहते हैं क्षमा! क्षमा का अर्थ है-वीरतापूर्वक सहन करना। और वह भी जिसकी तरफ से कष्ट दिया गया हो, उस पर लेशमात्र भी रोष लाये बिना। अपकारी का भी उपकार करना क्षमा है। ऐसे क्षमावान् को कौन वीर नहीं कहेगा ?

ऐसी क्षमा, क्षमाशील को संतोष और सुख पहुंचाती है। वह विरोधी के हृदय में जागृति उत्पन्न करती है। उसके हृदय को पलट देती है। क्षमा की बदौलत वह अपनी भूल के लिये पश्चात्ताप करने लगता है। गाँधी ने आलमखान पर जो क्षमा दिखाई, उसका असर जादू-सा हुआ। वह गांधीजी का दुश्मन मिट कर खास अंगरक्षक बन गया।

—oXo—

पाठ तेईसवाँ

सेवा और त्याग

सेवा से मेवा मिले, सेवा माँगे त्याग।
करने को कर्त्तव्य निज, सीखो प्यारे ! त्याग ॥

वीर बालको ! 'करो सेवा पाओ मेवा' यह कहावत सच्ची है।

हनुमानजी का नाम तो तुम जानते ही होगे। हनुमान ने राम की सेवा की तो लोग 'राम लक्ष्मण जानकी, जय बोलो हनुमान की' कहते हैं। बताओ, सेवा का फल कितना मीठा है ?

सारा संसार सेवा से ही चल रहा है। सूरज को देखो या चाँद को देखो, धरती को देखो या आसमान को देखो, नदी को देखो या पर्वत को देखो, गाय को देखो या बकरी को, वृक्ष को देखो या कुदरत की किसी दूसरी चीज़ को देखो, मालूम होगा कि ये सब अपनी-अपनी सेवाएँ दे रही हैं।

सेवा-अर्थ फलें वृक्ष, गाय देती दूध है,
सूर्य चंद्र नदी नाले, सेवा-सेवा पुकारते।

जब जगत् के ये जड़ पदार्थ और थोड़ी बुद्धि वाले चेतन पदार्थ भी इस प्रकार सेवा देते हैं, तब तो मनुष्य को जो बुद्धिबल में बहुत आगे बढ़ा हुआ है, अपना सारा जीवन सेवा और परोपकार में ही लगाना चाहिए।

जरा सोचो तो सही कि तुम्हारे माता—पिता ने तुम्हारी कैसी सेवा की है? जब तुम जरा—से थे और बोल भी नहीं सकते थे, तब तुम्हें जो कुछ चाहिए, उसकी फिक्र माँ—बाप ही रखते थे। आज तुम्हें पाल—पोसकर उन्होंने इतना बड़ा कर दिया है और आज भी तुम्हें खिलाने, पिलाने और पढ़ाने की चिन्ता माता और पिता के सिवाय और कौन करता है? ऐसे माता—पिता की सेवा करने वालों में श्रवण का नाम प्रसिद्ध है। उसने अपने बूढ़े, लूले' अंधे और गरीब मा—बाप को कावर में बिठलाकर और कंधे पर कावर लेकर यात्रा कराई थी।

केवल माता-पिता की ही नहीं किन्तु अपने पडोसी की सेवा करना, दुखी की सेवा करना, रोगी की सेवा करना, अतिथि की सेवा करना, कुटुम्ब की सेवा करना, समाज की सेवा करना, और जिसके अन्न-जल से अपना शरीर बना है उस जन्मभूमि की सेवा करना, यही अपना कर्तव्य है। नदी और पेड जब अपना फ़र्ज अदा करते हैं तो हम लोग जगत् के ऋणी क्यों रहें!

सेवा में सबसे पहले त्याग की आवश्यकता है। स्वार्थ और सेवा का मेल नहीं है। देखो, पिता के वचन की सेवा के लिए रामचंद्र राज्य छोड़कर चौदह वर्ष तक वन में बसे। भरत भी राम की सेवा के लिए ही अयोध्या में रहे। उन्होंने राज्य चलाया मगर राजा की हैसियत से नहीं किन्तु प्रजा के सेवक की हैसियत से चलाया।

इस तरह सेवा करने के लिए पहले देना पड़ता है, मगर बाद में दुगुना मिलता है। फिर भी सच्चा सेवक बदले की तनिक भी आशा नहीं रखता। वह अपने को सब का देनदार

ही समझता है और ऋण चुकाना अपना कर्त्तव्य मानता है। इस तरह समझकर सच्चा सेवक बदला पाने की आशा रक्खे बिना ही समाज, राष्ट्र और धर्म के लिए अपनी सेवाएँ देता रहता है। उस समय उसे कोई चाहे बुरा कहे, चाहे भला कहे, वह सब कुछ सहन कर लेता है। वह न अपनी निन्दा की परवाह करता है और न प्रशंसा की। इसी कारण यह कहा गया है कि सेवाधर्म योगियों के लिए भी दुर्लभ है!

ऐसे महान् सेवकों में, इस युग में समर्थ देशसेवक के रूप में गांधीजी का नाम सबसे पहला है। मगर उनके चरणों में बैठने वाले जवाहरलाल नेहरू का नाम भी याद रखने लायक है। उन्होंने भर-जवानी में वैभव और विलास का त्याग किया है। उन्होंने अपना धन, अपनी दौलत, यहाँ तक कि अपना जीवन भी देश के चरणों मे रख दिया है। सबकी भलाई के लिए वे वर्षों तक जेलखानों में रहे हैं। इसी प्रकार के और देशसेवक भी आज मौजूद हैं।

पहले समय में भी अनेक देश-सेवक अपनी इस भारत-भूमि पर हो चुके हैं। उनमें दानवीर भामाशाह भी एक हैं। उन्होंने देश की रक्षा के लिए अपनी सारी दौलत महाराणा प्रताप के चरणों में रख दी थी।

जब तुम बड़े होओ तब ऐसे ही बड़े सेवक बनना। मगर बड़े सेवक बनने के लिए अभी से ही सेवा करने की आदत डालो। इस समय तुम इस तरह सेवा कर सकते हो,:—

छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ाओ।
पढ़ने में जो तुम से पिछड़े हुए हैं उन्हें सिखाओ।

अपने घर का आंगन साफ रक्खो।
अपनी पाठशाला और गली भी साफ रक्खो।

तुम्हारे द्वार पर कोई भूखा-प्यासा आ जाय तो उसे भोजन-पानी दो।

इस प्रकार अगर तुम आज से भी सेवा का पाठ सिखोगे तो आगे चलकर तुम वडे सेवक बन सकोगे।

पाठ चौवीसवाँ

निर्भयता

वहमों से भय उपजता, कायरता का मूल,
भय को तज निर्भय वनो, कायर जीवन धूल।

वालमित्रों ! सेवा और त्याग के विषय में कहा जा चुका है। मगर तुम यह वात मत भूल जाना कि निर्भयता के विना सेवा और त्याग का अमल नहीं किया जा सकता। जव तक तुममें तनिक भी भय रहेगा तव तक तुम किसी भी काम में सफलता नहीं पा सकोगे। तुमने भगवान् पार्श्वनाथ की कथा सुनी है न ? अगर वे डरपोक होते तो धूनी जला कर वैठे हुए वावाजी से एक भी शब्द कहने की हिम्मत न करते और न जलते हुए साँप को वचा पाते।

इसी तरह भगवान् महावीर की निडरता के संवंध में भी तुम पढ़ चुके हो। वे वचपन में कितने निडर थे ? जो

वालक बचपन में निडर होता है, वही आगे चलकर महापुरुष वनता है।

वहम और कायरता से भय उत्पन्न होता है। भूत-प्रेत और डाकिन से भडकने वाला वहमी है। 'भय का भूत और शंका डाकिन' यह कहावत याद रखने योग्य है। वहमी मनुष्य भूत को नजर से देखे विना ही, केवल भय के मारे घवड़ा जाता है। ऐसे झूठे भय से कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है। इसलिए ऐसे वहमों को तुम अपने दिल से निकाल फैंको।

'सच वोल दूंगा तो मुसीवत आ पडेगी' मुझे कोई मारेगा' इस तरह की कायरता से भी दूर रहना चाहिए। सत्य के लिए प्राण दे देने वाले महापुरुषों की कथाएँ तुमने सुनी हैं। तो फिर उलाहना सुनने के डर से या थोडी-सी मार खाने के डर से असत्य वोलने का महापाप करना उचित नहां कहा जा सकता है।

भगवान् महावीर का उपदेश इतना ही है कि तुम खुद अभय वनो और दूसरों को अभय वनाओ। अभयदान सरीखा और कोई दान नहीं हैं। साँप से डरोगे तो थर-थर काँपने लगोगे और साँप तुम्हें काट खाएगा। या तो तुम रो पडोगे या उसे मारने का प्रयत्न करोगे। लेकिन अगर तुम खुद निडर होओगे तो साँप को भी निडर वनाओगे। तुम उसे मारने की इच्छा नहीं करोगे तो वह भी तुम्हें नहीं काटेगा। वह अपने रास्ते चला जायगा।

सभी धर्मग्रन्थों में निर्भयता वडी सम्पदा मानी गई है। इसका कारण यह है कि निर्भयता से दूसरे गुणों का विकास होता है। कायरता से दुर्गुणों का जन्म होता है। हिंसा करना

झूठ बोलना, चोरी करना-इत्यादि दुर्गुण कायरता से ही पैदा होते हैं। धर्म का पालन तो निडर मनुष्य ही कर सकता है। डरपोक के लिए धर्म नहीं है।

शकुन्तला का बेटा सर्वदमन था। वह बचपन में ही शेरों के साथ खेलता था। शेर के बच्चे का मुँह पकड़ कर वह कहता—अरे ओ शेर के बच्चे! मुझे तेरे दाँत गिनने हैं। और फिर वह जबर्दस्ती शेर के बच्चे का मुँह फाड़ देता था। इन सब कथाओं से यही शिक्षा मिलती है कि खुद मत डरो और दूसरों को मत डराओ। सचमुच निडर मनुष्य ही सच्चा वीर है। निडर मनुष्य ही सच्ची सेवा कर सकता है।

ई, स. १८८३ की बात है। ताप्ती नदी में जबर्दस्त बाढ़ आई थी। उस बाढ़ में बहुत-से लोग बह गये थे। दादाभाई पंड्या नामक एक पारसी जवान यह नहीं देख सका। उसने मौत का डर छोड़ दिया और मोह—ममता भी छोड दी। वह हिम्मत कर के नदी के पूर में कूद गया। त्याग करने वाला क्या नहीं कर सकता? उस बहादुर मनुष्य ने १०६ मनुष्यों को मौत के पंजे में से छुड़ाया। उसे थकावट मिटाने की भी फुर्सत नहीं थी। उसने दिन और रात तैरते—तैरते ही बिताए। धन्य है उसकी जननी को!

वीर बालको! तुम भी ऐसे ही निडर बनो।
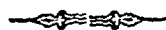
तत्त्व-विभाग

जीवन और चैतन्य का परिचय

(जीवन विकासश्रेणी और कर्मसिद्धान्त के परिचय के साथ)

चैतन्य और जड़तत्त्वमय जगत् का चित्र

अर्थात्

सचराचर सृष्टि का परिचय जीव और अजीवतत्त्व का परिचय

अनुक्रमणिका

पाठ पहला

जगत् के मुख्य दो तत्त्व

(जड़ और चेतन)

इस जगत् में मुख्य दो तत्त्व हैं—एक जीव दूसरा अजीव। जिसमें जानने की शक्ति हो, सुख—दुःख का अनुभव कर सकता हो और जो स्वयं बढ़ सकता हो, वह जीव कहलाता है। अपने शरीर में जीव है। इसीलिए अपन सजीव कहलाते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, बारीक-बारीक जन्तु, चींटियाँ और वनस्पति वगैरह सजीव हैं। क्योंकि उन सब में ज्ञान है, सुख-दुःख को अनुभव करने की शक्ति है, और अपने आप बढ़ते हैं। अर्थात् छोटे से बडे होते हैं। इसलिए वे सब सजीव हैं।

हमारे आसपास ऐसी भी कुछ चीजें हैं, जिनमें सुख-दुःख को अनुभव करने की शक्ति नहीं है। वे अपने आप बढ़ नहीं सकतीं। जैसे-छतरी, बूट, चाकू, मेज़, दीवाल, किताब, कलम, चाक आदि। यह सब निर्जीव वस्तुएँ हैं। इन्हें जड़ भी कह सकते हैं।

यह सारा जगत् जीव और अजीव, अथवा चेतन और जड़ इन्हीं दो तत्त्वों का विस्तार है। इन दो तत्त्वों में से अपन पहले जीव तत्त्व के संबंध में विचार करें।

जीव-तत्त्व का विशेष परिचय

(त्रस और स्थावर)

जगत् में जीव अनन्त हैं। उनकी गिनती हो ही नहीं सकती। अलबत्ता जीव के गुण धर्म अनेक हैं। गुण की दृष्टि से

उनके अलग-अलग भेद किये जा सकते हैं। जीव तत्त्व को विशेष रूप से समझने के लिए ही उसके अलग-अलग दृष्टियों से भेद किये जा सकते हैं—(१) त्रस और (२) स्थावर।

त्रस—जो जीव अपनी इच्छा के अनुसार चल-फिर सकते हैं, एक जगह से दूसरी जगह जा सकते हैं, वे 'त्रस जीव' कहलाते हैं।

स्थावर—जिन जीवों में ऐसी शक्ति नहीं होती अर्थात् जो एक ही स्थान पर स्थिर रहते हैं, वे जीव 'स्थावर' कहलाते हैं।

पाठ दूसरा

जीवों की चार गतियाँ

जगत् के जीवों की चार गतियाँ हैं:—(१) नरक गति (२) देवगति (३) मनुष्यगति और (४) तिर्यंचगति। संसार के समस्त जीवों का इन्हीं चार गतियों में समावेश हो जाता है।

गति का अर्थ है—गमन करना। संसार के सब जीव एक अवस्था से दूसरी अवस्था में गमन करते हैं। इसीलिए यह संसार कहलाता है। लेकिन जो जीव इन चार गतियों में भ्रमण करने के बंधन से छूट जाते हैं, वे सिद्धगति में पहुँच जाते हैं। वहाँ पहुँचने के बाद वे कभी संसार में लौटकर नहीं आते। इसलिए संसारी जीवों की ही ये चार गतियाँ हैं।

इन चार गतियों में से हम सब लोग मनुष्यगति में कहलाते हैं। अपने आस-पास जो पशु-पक्षी आदि हैं, वे तिर्यञ्चगति के जीव हैं। नरकगति और देवगति के जीव अपनी नजर के सामने नहीं हैं।

नरकगति, देवगति और मनुष्यगति के जीव त्रस होते हैं। परन्तु तिर्यंचगति के कोई-कोई जीव त्रस और कोई-कोई स्थावर होते हैं।

नरकगति और देवगति

नरकगति के जीव नारक या नारकी कहलाते हैं और देवगति के जीव देव या देवता कहलाते हैं।

नरकगति

जो जीव दूसरे जीवों का खूब वध करता है, बहुत ज्यादा परिग्रह और ममता रखता है, हिंसा, झूठ आदि क्रूर कर्मों में सदा प्रवृत्ति करता रहता है, दूसरे के धन का अपहरण करता रहता है. भोग-विलास में बहुत फँसा रहता है, वह नरकगति में जाता ह।

नरक सात हैं:- (१) रत्नप्रभा (२) शर्कराप्रभा (३) वालुकाप्रभा (४) पंकप्रभा (५) धूमप्रभा (६; तम प्रभा और (७) महातमप्रभा।

इन सात नरक-भूमियों में नारकी जीव उत्पन्न होते हैं। सातों नरकों के जीव लगातार हमेशा वेदना भोगते रहते हैं। पहले नरक की वेदना से दूसरे नरक की वेदना ज्यादा है। इसी तरह आगे-आगे के नरकों की वेदना अधिक-अधिक है।

पहले तो नरक की भूमि ही ऐसी है कि वहाँ बेहद सर्दी और गर्मी का भयंकर दुःख होता है। मगर भूख और प्यास का दुःख तो उससे भी भयंकर होता है। इन दोनों दुःखों के सिवाय एक बड़ा भारी दुःख यह है कि वहाँ के जीव सदैव आपस में मार-काट मचाये रहते हैं। जैसे बिल्ली और चूहा में वैर है, साँप और नेवले में जन्मजात वैर है, उसी प्रकार नरक का प्रत्येक जीव, दूसरे का वैरी ही होता है। इस कारण वे एक दूसरे को देखते ही कुत्तों की तरह आपस में काटने लगते हैं, आपस में लड़ते हैं और क्रोध से जलते हैं। इस तरह नारकी जीव क्षेत्र-स्वभाव से उत्पन्न और आपस में पैदा की हुई वेदनाओं को भोगते हैं। शुरु के तीन नरकों में परमा-धार्मिक नामक देव भी नारकी जीवों को बहुत निर्दयता के साथ कष्ट पहुँचाते हैं। इस प्रकार नरक में तीन तरह की घोर वेदना होती हैं।

देवगति

जो जीव हिंसा आदि दोषों से छूटने के लिए व्रत-प्रत्या-ख्यान करते हैं, लेकिन जिनमें क्रोध, मान, माया और लोभ का अंश बना रहता है; जो पराधीन होकर अथवा दूसरों की देखा-देखी अहितकारी प्रवृत्तियों का त्याग करते हैं; जो बाल भाव से देह-दमन की क्रियाएँ करते हैं; ऐसे जीव देवगति पाते हैं। उन्हें देवगति के सुख मिलते हैं।

देवों की चार जातियाँ हैं— (१) भवनपति (२) वाणव्यन्तर (३) ज्योतिषी और (४) वैमानिक। इन चार मुख्य जातियों में से प्रत्येक के कई-कई भेद हैं।

मनुष्यगति

जैसे पशु-पक्षियों में अलग-अलग तरह के आकार देखे जाते हैं, वैसे मनुष्यों में नहीं देखे जाते। सब मनुष्यों के शरीर की बनावट एक-सी होती है। इसलिए शरीर की दृष्टि से सब मनुष्य सरीखे हैं फिर भी उनके अलग-अलग तरह के रंग रूप, कद, धंधा, धर्म और स्थान आदि के कारण उनमें भेद किये जा सकते हैं।

रंग की दृष्टि से--गेहुँआ वर्ण वाला, गोरा, काला, नीला, लाल आदि।

रूप की दृष्टि से--चपटी नाक वाला, छोटी--छोटी आँखे वाला, मोटे होठ वाला, घुंघराले वालों वाला, नोकदार नाक वाला, पतले होठ वाला, आदि।

कद की दृष्टि से—लंबा, मँझोला, वौना आदि

धंधा की दृष्टि से—किसान, जुलाहा, सुतार, लुहार, दर्जी, नाई, मोची, वकील, वणिक् आदि।

धर्म की दृष्टि से—हिन्दू, मुसलमान, जैन, बौद्ध, सिख, ईसाई, यहूदी, पारसी आदि।

स्थान की दृष्टि से--हिन्दुस्थानी, चीनी, जापानी, अंगरेज़, जर्मन, अमेरिकन, तथा पहाडी, जंगली शहरी ग्रामीण आदि।

इस प्रकार कई तरह से मानव--जाति के भेद किये जा सकते हैं। शास्त्र में मानव--जाति के ३०३ भेद नीचे लिखे अनु-सार वतलाये गये हैं।

पर्याप्त और अपर्याप्त

बहुत-से मनुष्य-प्राणी स्त्री-पुरुष के संयोग से गर्भ में उत्पन्न होते हैं। उन्हें गर्भज मनुष्य कहते हैं। 'गर्भज' मनुष्यों के आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन, यह छह पर्याप्तियाँ होती हैं। वे पर्याप्त गर्भज मनुष्य कहलाते हैं। और जिन गर्भज मनुष्यों के छह पर्याप्तियों में से कम पर्याप्तियाँ होती हैं, वे अपर्याप्त गर्भज मनुष्य कहलाते हैं।

मनुष्य-जगत् में १५ कर्मभूमियाँ, ३० अकर्मभूमियाँ और ५६ अन्तरद्वीप, इस तरह १०१ भूमियाँ हैं। इनमें मनुष्य रहते हैं। क्षेत्र की दृष्टि से १०१ गर्भज मनुष्य पूरी पर्याप्तियों वाले (पर्याप्त), १०१ अधूरी पर्याप्ति वाले (अपर्याप्त), इस प्रकार कुल २०२ प्रकार के हैं।

इनके अतिरिक्त मनुष्यों के कफ, बलगम' शौच, वीर्य वगैरह में जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे 'संमूर्छिम मनुष्य' कहलाते हैं। वे भी इस तरह १०१ प्रकार के हैं। इस तरह शास्त्रकारों ने कुल ३०३ भेद मानवजाति के बतलाये हैं।

जिस भूमि में हम लोग रहते हैं वह कर्मभूमि कहलाती है। जिसमें मोक्ष मार्ग को जानने वाले और उसका उपदेश देने वाले तीर्थंकर पैदा हो सकते हैं वह कर्मभूमि कहलाती है। ऐसी कर्मभूमियाँ पन्द्रह हैं-पाँच भरत क्षेत्र पाँच ऐरवत क्षेत्र, पाँच विदेह क्षेत्र, शेष सब अकर्मभूमियाँ हैं। अकर्मभूमियों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। अकर्मभूमियों में और देवगति में तो भोग भोगे जा सकते हैं। वहाँ के जीव मोक्ष नहीं पा सकते। इसलिए तो देव भी कर्मभूमि में उत्पन्न होने के लिए तरसते हैं।

मनुष्यों के कफ, सेडा, मल मूत्र वगैरह गंदगी में भी जीव उपजते हैं। इसलिए सब जगह सफाई रखने का खूब आग्रह किया जाता है। कफ वगैरह को धूल से ढँक देने का मतलब भी यही है कि उनमें संमूर्छिम जीवों की उत्पत्ति न हो। जीवों की उत्पत्ति न हो तो उनका नाश भी न करना पडे और हम पाप से बच सकते हैं। पहले तो लापरवाही करके जीवों की उत्पत्ति होने देना और फिर उनका नाश करना यह पाप है। अच्छी बात यह है कि सावधानी के साथ स्वच्छता का विवेक रखना चाहिए। यही हितकर है। ऐसी स्वच्छता रखने से शारीरिक और धार्मिक दृष्टि से लाभ ही है।

नारकी जीवों के भेद

नारकी जीवों के चौदह-भेद हैं:-ऊपर बतलाए हुए सात नरकों में कोई पर्याप्त होते हैं और कोई अपर्याप्त होते हैं। इस तरह कुल चौदह भेद हैं।

देवों के ११८ भेद

भवनपति देवों के २५ भेद
वाणव्यन्तर देवों के २६ भेद
ज्योतिषी देवों के १० भेद
वैमानिक देवों के ३८ भेद

९९

इन निन्नयानवे के पर्याप्त और अपर्याप्तके भेद से दो—दो भेद हैं इसीलिए सब मिलकर १९८ भेद हुए।

पाँच इन्द्रियां

—:०:

हम पहले तीन गति के जीवों के संबंध में विचार कर चुके हैं। इन तीनों गतियों वाले जीवों के पाँच इन्द्रियाँ होती हैं।

जिसके द्वारा जीवन-यात्रा के लिए उपयोगी ज्ञान हो सके, उसे इन्द्रिय कहते हैं। यह भी कह सकते हैं कि जिसके द्वारा जीव की पहचान हो उसे इन्द्रिय कहते हैं। ऐसी पाँच इन्द्रियां यह हैं :-

स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षु-इंद्रिय और श्रोत्रेंद्रिय। इन पाँचों इंद्रियों को हम क्रम से (१) चमडी (२) जीभ (३) नाक (४) आँख और (५) कान. नामों से पहचानते हैं।

इन पाँच इंद्रियों से नीचे लिखी बातें जानी जाती हैं—

(१) चमडी से वस्तु के स्पर्श का ज्ञान होता है। स्पर्श आठ प्रकार के होते हैं:- (१) कठोर स्पर्श (२) कोमल स्पर्श (३) भारी स्पर्श (४) हलका स्पर्श (५) ठण्डा स्पर्श (६) गरम स्पर्श (७) चिकना स्पर्श (८) रुखा स्पर्श।

(२) जीभ से स्वाद—रस का ज्ञान होता है। इसके पाँच भेद हैं—(१) तीखा (२) कडुवा (३) खट्टा (४) खारा और (५) मीठा।

(३) नाक से गंध का ज्ञान होता है। गंध दो तरह की होती है—सुगंध और दुर्गंध।

(४) आँख से रूप का तथा आकार का ज्ञान होता है। रूप (रंग) पाँच प्रकार का है-(१) काला (२) नीला (३) लाल (४) पीला और (५) सफेद।

(५) कान से शब्द का ज्ञान होता है। शब्द तीन तरह के हैं:—

(१) सजीव प्राणियों के मुंह से निकला शब्द।
(२) अजीव वस्तुओं से होने वाला शब्द।
(३) दोनों का मिला हुआ शब्द।

इस तरह पाँच इन्द्रियों द्वारा २३ विषयों का ज्ञान होता है। मगर यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इन्द्रियाँ रूपी पदार्थों को ही जान सकती हैं और उनमें से भी सब को नहीं, पूरी तरह भी नहीं। वे थोडे बहुत पदार्थों को अधूरी तरह जानती हैं। ऊपर कहे अनुसार मनुष्य मात्र को पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं। देवों और नारकियों को भी पांचों इन्द्रियाँ होती हैं।

तिर्यंचगति के सब जीवों को पांचों इन्द्रियां नहीं होती। उनमें एक से लेकर पांच इन्द्रियों तक के जीव होते हैं।

सिर्फ एक इन्द्रिय वाले जीव स्थावर कहलाते हैं। दो, तीन और चार इन्द्रिय वाले जीव विकलेन्द्रिय त्रस जीव कहलाते हैं। पांचों इन्द्रियों वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय कहलाते हैं। इस विषय का विशेष परिचय आगे दिया जायगा।

मन वाले और बिना मन के जीव

(संज्ञी और असंज्ञी जीव)

ऊपर बतलाई हुई पांच इन्द्रियों की तरह एक साधन और भी है। उस साधन के द्वारा भी हम जीवन-उपयोगी ज्ञान

प्राप्त करते हैं । वह साधन मन कहलाता है। मगर मन, चमडी या आंख आदि की तरह बाहर से दिखाई नहीं देता। इस कारण यह 'अन्तःकरण' भी कहलाता है।

ऊपर कही हुई बाह्य इंद्रियों के द्वारा सिर्फ रंग, रूप, रस गंध और स्पर्श तथा आकार वाले रूपी पदार्थों का ही ज्ञान हो सकता है और वह भी पूरी तरह नहीं लेकिन मन से रूपी और अरूपी (न दिखाई देने वाले) सब पदार्थों का अधिक विशाल ज्ञान हो सकता है । मन का काम है विचार करना।

जिस प्रकार यह नियम नहीं है कि सब जीवों को पूरी पूरी इन्द्रियां होनी ही चाहिए; उसी प्रकार यह नियम भी नहीं कि सभी जीवों को मन होना ही चाहिए । बहुत से जीव मन वाले होते हैं और बहुत-से बिना मन वाले होते हैं।

जो जीव मन वाले होते है वे संज्ञी जीव कहलाते हैं।

जो जीव मन वाले नहीं होते वे असंज्ञी जीव कहलाते हैं।

मन किसको होता है ?

सामान्य रूप से जिन जीवों के पांचों इन्द्रियाँ नहीं होतीं, उनके मन होता ही नहीं है। जिनके पांचों इन्द्रियाँ होती हैं, उनमें से किसी-किसी के मन होता है और किसी-किसी के नहीं होता।

नरक और देवगति के जीवों को पांचों इन्द्रियाँ हैं और मन भी है। मनुष्यगति के जीवों के भी पांच इन्द्रियों के साथ मन भी होता है। तिर्यंचों में स्थावर (एकेन्द्रिय) और विकलेन्द्रिय (दो,तीन; चार इन्द्रिय वाले) त्रस जीवों के मन नहीं

होता । तिर्यंच पंचेंद्रियों में जो जीव स्त्री- पुरुष के संयोग द्वारा गर्भ से उत्पन्न होते हैं, उन्हीं को मन होता है । बाकी के तिर्यंचों के मन नहीं होता । यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि गर्भज मनुष्यों के ही मन होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच

मनुष्यों के सिवाय जिन प्राणियों को हम देखते हैं. वे सब तिर्यंचगति के जीव हैं । उन जीवों में से जिनमें मनुष्य की तरह चमडी, जीभ: नाक, आँख और कान होते हैं, वे जीव पंचेंद्रिय तिर्यंच कहलाते हैं ।

पंचेंद्रिय तिर्यंच जीव मुख्य रूप से तीन प्रकार के हैं:—
(१) जलचर (२) स्थलचर (३) नभचर (खेचर)

(१) जलचर–जो जीव पानी में ही रहते हैं और पानी में ही चलते–फिरते हैं, वे जलचर कहलाते हैं ।

(२) स्थलचर– जो जीव जमीन पर रहते हैं और जमीन पर ही चलते फिरते हैं, वे स्थलचर कहलाते हैं ।

(३) नभचर–जो जीव जमीन या पेड़ों पर रहते हैं और पंखों द्वारा आकाश में उड़ते हैं, वे नभचर कहलाते, हैं । उन्हें खेचर भी कहते हैं । (खे–आकाश में चर–चलने वाले)

१–जलचर तिर्यंच प्राणी

नदी, सरोवर, कुआ, बावडी, तालाब, समुद्र आदि जलाशयों में रहने वाले जल–चर जीवों की अनेक जातियाँ हैं । जैसे:–

१-सुनहरी, रूपहरी, उड़ने-वाली, आवाज करने वाली भांति-भांति की मछलियां।

२-तरह-तरह के छोटे और मोटे मगर और मगरमच्छ।

३-बहुत विशाल शरीर वाले शुंशुमार जाति का जीव (व्हेल) आदि।

४-तरह-तरह के कछुवे।

५-तन्तु की तरह लम्बा और खूब बालों वाला ग्राह।
६-अनेक प्रकार के मेंढक।

स्थलचर तिर्यंच प्राणी

गांव, खेत, जंगल, मैदान आदि स्थलों में फिरने वाले बहुत-से प्राणी हम देखते हैं। उन प्राणियों के मुख्य तीन विभाग हैं:-

(१) चतुष्पद (२) उरपरिसर्प (३) भुजपरिसर्प।
१-चतुष्पद-चार पैर वाले तिर्यंच चतुष्पद कहलाते हैं।

२-उरपरिसर्प-पेट रगड़ कर चलने वाले। जैसे साँप, अजगर वगैरह। उनकी भी अनेक जातियां हैं। सांपों में कोई फन वाला, कोई बिना फन का, कोई जहरीला, कोई बिना जहर का, होता है। उनका रूप-रंग और लम्बाई-मोटाई भी अलग तरह की होती है।

३-भुजपरिसर्प—भुजाओं (हाथों) के सहारे चलने वाले भुजपरिसर्प कहलाते हैं। जैसे—छिपकली,

चन्दन गोह, पाटला गोह, चूहा, नेवला वगैरह।

३—खेचर तिर्यंच प्राणी

खेचर जीवों की मुख्य दो जातियाँ हैं:—

(अ) चमडे के पंख वाले चर्मपक्षी; जैसे चमगीदड आदि।

(ब) रोमों के पंख वाले रोमपक्षी; जैसे —तोता, कौआ, कबूतर, चकवा, वतक, गीध, उल्लू आदि।

विकलेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय

(दो, तीन, चार इन्द्रियों वाले जीव)

जिन जीवों के पांच इन्द्रिय में से केवल दो तीन या चार इन्द्रियां होती हैं वे त्रस जीव विकलेन्द्रिय कहलाते हैं।

विकलेन्द्रिय अर्थात् अधूरी इन्द्रियां। यों तो एक इन्द्रिय वाले जीव भी अधूरी इंन्द्रिय वाले ही हैं, मगर वे स्थावर तिर्यंच कहलाते हैं। इसलिए त्रस विकलेंद्रिय जीवों में उनकी गिनती नहीं की गई।

विकलेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के तीन भेद हैं:—

(१) चतुरिंद्रिय (२) त्रीन्द्रिय और (३) द्वींन्द्रिय।

(२) चतुरिंद्रिय तिर्यंच—जिनके शरीर, जीभ, नाक और आंख, यह चार इंद्रियाँ होती हैं वे चतुरिन्द्रिय तिर्यंच कहलाते हैं। उनके सिर्फ कान नहीं होते। जैसे—टिड्डी भौंरा मक्खी, मच्छर, बिच्छू आदि।

(२) त्रिद्रिय तिर्यंच—जिनके, जीभ और नाक यह तीन इन्द्रियाँ होती हैं वे त्रीन्द्रिय तिर्यंच कहलाते हैं। उनके पैदा होने के स्थानों के कारण कई भेद किये जा सकते हैं जैसेः—

१—जमीन में से उत्पन्न होने वाले-कीड़ा, मकोड़ा, उधेई, जूं आदि !

२—धान्य और खाने की चीजों में होने वाले-घुन, ईली।

३—गोबर और विष्ठा में उत्पन्न होने वाले—कीडे गुबरीला आदि

४—मनुष्यों और पशुओं के अंगोपांगों में उत्पन्न होने वाले जूं, चींचडी, गिलोडा, आदि।

५—भिन्न—भिन्न प्रकार के उपकरणों में उत्पन्न होने वाले—खटमल, कुंथवा, मच्छर आदि।

६—वर्षा से उत्पन्न होने वाले—गोकल गाय आदि।

(२)द्वीन्द्रिय तिर्यंच

जिन जीवों के स्पर्श और रस परखने की इंद्रियां होती ह, उन्हें, द्वीन्द्रिय तिर्यंच कहते हैं। उनकी भी बहुत - सी जातियाँ हैं। जैसे—

१—पानी में उत्पन्न होने वाले-शंख, कौडी, सीप आदि।

२—वासी अनाज में पैदा होनेवाले-लार आदि।

३—लकडी में पैदा होने वाले घुन आदि।

४—धान्य में पडने वाली इल्ली आदि।

५—मनुष्य के शरीर में होने वाले कीडे, नेरू आदि।

६—वर्षा से जमीन पर होने वाले अलसिया आदि।

इनमें से बहुत से जीव लापरवाही के कारण पैदा होते है।इसलिए लापरवाही करना उचित नहीं हैं। बिना छना पानी नहीं पीना चाहिए। घर साधन, फरनीचर वगैरह स्वच्छ रखना चाहिए। रांधा हुवा अन्न वासी नहीं रखना चाहिए।

चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और द्वीन्द्रिय अर्थात् विकलेन्द्रियों में जो जीव बहुत सूक्ष्म हैं वे जंतु कहलाते हैं। उनसे कुछ बडे शरीर वाले कीडे कहलाते हैं। इन जंतुओं और कीडों में से कोई कोई बडे उद्यमशील होते हैं तो कोई कोई केवल पेट भरने वाले होते हैं। कोई बहुत कोमल होते हैं तो कोई बडे-गंदे होते हैं।

इनमें से किसी भी जीव के मन नहीं होता। इसलिए यह सब असंज्ञी ही होते हैं।

एकेन्द्रिय तिर्यंच-स्थावर

जिन जीवों के सिर्फ शरीर ही होता है जीभ आदि दूसरी कोई भी इन्द्रिय नहीं होती, वे एकेंद्रिय जीव कहलाते हैं। दूसरे तिर्यंच जीवों की भांति यह अपने आप चल—फिर नहीं सकते। इस कारण इन्हें स्थावर कहते हैं।

इन स्थावर तिर्यंच एकेन्द्रिय जीवों की मुख्य पांच जातियां हैं—पृथ्वी, पानी, अग्नी, वायु और वनस्पति।

इन पाँच प्रकार के एकेन्द्रिय जीवों में कितने ही ऐसे हैं जो सूक्ष्म होते हैं। वे दिखाई नहीं देते। दूसरे बादर होते हैं। उनमें से कुछ दिखाई देते हैं और कुछ नहीं भी दिखाई देते।

१—पृथ्वीकाय—जब पृथ्वी अपने मूल पिंड से अलग हो जाती है तब अमुक समय के बाद वह जीव-रहित हो जाती है। मगर जब तक वह जुड़ी रहती ह तब तक वह सजीव ही होती है। पृथ्वीकाय के जीवों की बहुत-सी जातियाँ हैं। जैसे—

माटी—खान की मिट्टी काली, पीली, नीली, सफेद, लाल, गोपीचंदन की मिट्टी आदि।

रेत—रेत भी अनेक प्रकार की होती है।

धातु—चांदी, सोना, तांबा, लोहा, पीतल, पारा आदि।

नमक—तरह-तरह के नमक।

नोट:—हड़ताल, हिंगलू, कोयला वगैरह भी पृथ्वी की ही जातियाँ हैं।

२—अपकाय—पानी को अपकाय कहते हैं। इसकी भी अनेक जातियाँ हैं। जैसे—आकाश से गिरने वाला पानी, ओले का पानी, झरने से बहने वाला पानी और कुँआ, सरोवर, तालाब, नदी आदि का पानी। जमीन खोदने पर कहीं मीठा, कहीं खारा, कहीं फीका और कहीं कडुवा पानी निकलता है। पानी में यह भेद जमीन के कारण होता है।

३—तेउकाय—अग्नि को तेउकाय कहते हैं। इसकी भी अनेक जातियाँ हैं। जैसे—चूल्हे की आग, दावानल

की आग, पेड़ों की रगड़ से पैदा होने वाली आग, चकमक की आग, बिजली की आग: आदि।

४--वायुकाय-हवा को वायुकाय कहते हैं। हवा में भी जीव हैं। हवा भी अनेक प्रकार की होती है। पृथ्वी पानी और अग्नि की तरह हवा को हम आँखों से नहीं देख सकते; लेकिन स्पर्श से हवा मालूम होती है। दिशाओं के भेद से हवा के भी पूरबी, पछाँही आदि अनेक भेद होते हैं। इनके अतिरिक्त उकलिया, वंटोलिया, मंड लिया और संवर्तक आदि भी अनेक भेद हैं।

५--वनस्पतिकाय--सभी तरह की वनस्पतियाँ भी एकेन्द्रिय हैं। वनस्पतियों की अनेक जातियाँ हैं। उसके भी अनेक भेद किये जा सकते हैं। जैसे:--

१--आयु की दृष्टि से-एकवर्षायु, द्विवर्षायु बहुवर्षायु आदि।

२--स्थान की दृष्टि से---भूमिज, जलज, अंतरिक्षज आदि।
स्वरूप की दृष्टि से--वृक्ष, पौधा, लता आदि।

इन सब दृष्टियों से वनस्पति के भेद किये जा सकते हैं। पर हमें तो यही विचार करना है कि जुदा-जुदा देहों के द्वारा जीव जी रहा है। इसलिये जीव और शरीर की दृष्टि से ही हम वनस्पति के भेद करेंगे।

अगर हम ध्यानपूर्वक वनस्पति का निरीक्षण करें तो हमें नीचे लिखे भेद मालूम होंगे—

मूल, धड़, शाखा, प्रशाखा (टहनी), छाल, प्रवाल (कोंपल) पत्र, फल और बीज।

१—ऐसे एक शरीर में एक ही जीव हो वह प्रत्येक वनस्पति है।

२—एक शरीर में अनंत जीव हों तो वह साधारण वनस्पति है।

नोट—साधारण अर्थात् अनन्त जीवों के बीच एक साधारण शरीर।

प्रत्येक और साधारण वनस्पतिकाय के लक्षण

प्रत्येक और साधारण वनस्पतिकाय की मामूली पहचान यह है कि जो शरीर तोड़ने पर सरीखा टूटे वह साधारण वनस्पतिकाय है और जो टेढ़ा-मेढ़ा टूटे वह प्रत्येक वनस्पतिकाय है।

जिसे तोड़ने पर तन्तु न हों, जिसके नसें और गांठें गुप्त रही हुई हों, वह साधारण और इससे विपरीत प्रत्येक वनस्पतिकाय।

इन पहचानों को ध्यान में रखकर हरेक वनस्पति का अभ्यास करने से प्रत्येक और साधारण वनस्पतिकाय का विशेष गहरा ज्ञान हो सकता है।

सब प्रकार के कंद, मूल, अंकुर, और कौपलें साधारण वनस्पति हैं और इनके अतिरिक्त दूसरी वनस्पतियाँ प्रत्येक हैं।

१—साधारण वनस्पतिकाय

अधिक परिचय में आने वाली साधारण वनस्पतियों के नाम नीचे लिखे अनुसार हैं:—

प्याज, अदरक, सूरण, रतालु, पिंडालु, आलू, शकरकन्द, मूली, हरी हल्दी, गाजर, खरसाणी, मोथा, अमृतवेल, थूहर, अरबी, गरमर, नील, सेवार आदि।

२—प्रत्येक वनस्पतिकाय

प्रत्येक वनस्पति की पहचान ऊपर बतलाई जा चुकी है। उसके बारह विभाग दृष्टान्त सहित, इस प्रकार है:—

१—वृक्ष—(क) एक बीज वाले, जैसे-हरड़, बहेड़ा, आंवला, आम, जामुन, बेर, नीम आदि।

(ख) बहुत बीज वाले, जैसे-जामफल, सीताफल, अनार, पपैया, नींबू, नारंगी आदि।

२—गुच्छ—नीचे और गोलाकार पेड़ गुच्छ कहलाते हैं। जैसे बेंगन का पौधा, आदि।

३—गुल्म—फूल की जाति को गुल्म कहते है। जैसे-जाई, जुही, मरुवा, केतकी केवड़ा, सूरजमुखी, गुलाब आदि।

४—वेल-तोरई, करेला, कंकोड़ा, तुम्बा, ककड़ी, लौकी आदि।

५—लता-अशोकलता, नागलता, चंपकलता पद्मलता, आदि।

६—पावग-गांठो वाला झाड़ पावग (पर्वत) कहलाता है। जैसे-ईख, गन्ना, बेत, बांस आदि।

७–तृण– दूब वगैरह हरी घास।

८–वलिया––ऊँचे और गोल पेड़ को वलिया कहते हैं। जैसे–
सुपारी, ताड़ नारियल आदि।

९––हरितकाय––(भाजी,)मूली के पत्ते ,चन्दलोई, मैथी, सुवा,
धनिया आदि।

१०–धान्य––(क) एकदल वाले–गेहूं, जौ, जुवार, बाजरा,
मक्का, तुष सहित चावल,
आदि।

(ख)द्विदल वाले–कठोल (जिसकी दाल बन
सके वह) जैसे – मूंग, मोंठ
उड़द, तुअर, मटर, चँवला
चना, मसूर, वाल आदि।

११–जलवृक्ष––पानी में होने वाले जैसे कमल, सिंघाड़े आदि

१२–कोसंडा––कुकरमुत्ता, बिल्ली का टोप वगैरह।

वनस्पतिकाय के भेद

वनस्पतिकाय के छह भेद हैं। १सूक्ष्म २ प्रत्येक और साधारण इन तीनों के दो–दो भेद हैं:—पर्याप्त अर्थात् पूरी पर्याप्ति वाला और अपर्याप्त अर्थात् अधूरी पर्याप्ति वाला। इस प्रकार सब छह भेद हुये।

मनुष्यजीवन और वनस्पतिजीवन की तुलना

१—मनुष्य जब जन्म लेता है तो बालक होता है: फिर वह जवान हो जाता है: और फिर वृद्ध होकर मर जाता है।

इसी तरह जब वनस्पति उगती है तो अंकुर रूप होती। फिर वह जवान होती है; और अन्त में वृद्धी होकर मर जाती है।

२—मनुष्य जैसे-जैसे बड़ा होता है, तैसे-तैसे उसके हाथ, पैर आदि अवयव भी बड़े होते जाते हैं इसी तरह वनस्पति ज्यों-ज्यों बड़ी होती जाती है, त्यों-त्यों उसकी शाखाएँ, टहनियाँ आदि अवयव बढ़ते जाते हैं

३—मनुष्य दिन में जागता है और रात में सोता है। इसी तरह कमल जैसी वनस्पतियां भी सिकुड़ती हैं और विकसित होती हैं।

४—मनुष्य में लज्जा और भय पाया जाता है और वनस्पति में भी लज्जा और भय का भाव देखा जाता है। उदाहरण के लिए लज्जवंती को लो।

५—जैसे मनुष्य आहार के द्वारा बढ़ता है वैसे ही वनस्पति भी भूमि, जल, प्रकाश और वायु आदि के आहार से बढ़ती है।

६—मनुष्य इष्ट आहार के द्वारा बढ़ता है और अनिष्ट आहार से दुर्बल होता है, इसी प्रकार वनस्पति भी इष्ट आहार से पुष्ट और अनिष्ट-आहार से जर्जरित होती है।

७—जैसे मनुष्य को पांडु सूजन आदि रोग होते हैं, वैसे ही वनस्पति को भी पांडु सूजन वगैरह रोग होते हैं। मनुष्य की तरह वनस्पति भी औषध के सेवन से नीरोगी हो जाती है।

८—मनुष्य पर जहर का असर होता है, उसी तरह वनस्पति पर भी जहर का असर होता है।

९—जैसे मनुष्य की आयु नियत है, वैसे ही वनस्पति की भी आयु नियत है।

इस प्रकार मनुष्य-जीवन के साथ वनस्पति-जीवन की दूसरी तरह से भी तुलना की जा सकती है। *

तिर्यंच के ४८ भेद

शास्त्रकारों ने तिर्यंच के कुल ४८ भेद नीचे लिखे अनुसार बतलाये हैं—

एकेन्द्रिय तिर्यंच के २२ भेद –

पृथ्वीकाय, अपकाय तेउकाय और वायुकाय; इन चारों के पर्याप्त और अपर्याप्त अर्थात् आठ भेद। इन आठों के भी सूक्ष्म और बादर के भेद से दो-दो जातियाँ होती हैं। इस तरह १६ भेद हुए।

वनस्पतिकाय के छह भेद—सूक्ष्म, प्रत्येक, साधारण: इन तीनों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से छह। पूर्वोक्त सोलह और यह छह मिलकर २२ भेद हुए।

२—विकलेन्द्रिय तिर्यंच के ६ भेद:—

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, और चतुरिन्द्रिय, इन तीनों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से ६ भेद हुए।

---

* इस तुलना में आये हुए बहुत से विचार श्रीधीरजलाल टोकरसी इत 'जीव विचार' में से लिये गये हैं।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच के २० भेद

१ जलचर २ स्थलचर में से चतुष्पद स्थलचर, ३ उरपरिसर्प स्थलचर, ४ भुजपरिसर्प स्थलचर, ५ खेचर। इन पांचों की दो-दो जातियाँ-गर्भज और संमूर्छिम। यह दस भेद हुए और इन दसों के पर्याप्त तथा अपर्याप्त, इस प्रकार दो दो भेद होने से कुल २० भेद हुए।

जीव के ५६३ भेद

नारकी जीवों के १४ भेद—सात नरकों के पर्याप्त और अपर्याप्त।

देवता के १९८ भेद—भवनपति २५, वाणव्यंतर २६, ज्योतिषी १०, वैमानिक ३८; कुल ९९ के पर्याप्त और अपर्याप्त।

मनुष्य के ३०३ भेद—१०१ गर्भज पर्याप्त, १०१ गर्भज अपर्याप्त १०१ संमूर्छिम।

तिर्यंच के ४८ भेद—एकेन्द्रिय के २२, विकलेन्द्रिय के ६ और तिर्यंच पंचेन्द्रिय के २०।

अन्त में

प्यारे विद्यार्थियों !

संसार की चर-अचर सृष्टि का चित्र तुम देख चुके। जीव क्या है ? वह किस तरह उत्पन्न होता है ? कैसे — कैसे शरीर धारण करता है ? उसके लक्षण कैसे--कैसे हैं ? इन प्रश्नों के सम्बन्ध में धार्मिक जीवन बिताने वाले अपने महान् वैज्ञानिक पुरुषों ने बहुत विचार किया है। उसमें से यहाँ तो जीव तत्त्व का संक्षेप में ही परिचय दिया गया है।

इस संक्षिप्त परिचय को पढ़ने के बाद तुम जान गये होगे कि जो जीवन — तत्त्व हम सबमें व्याप्त है, वही जीवन — तत्त्व देवता और नारकी से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव तक में व्याप्त है। हममें और उनमें जो अन्तर दिखाई देता है वह तो सिर्फ विकास का ही अन्तर है। मनुष्य जब कि बहुत विकसित प्राणी है, तब तिर्यंच, चतुरिंद्रिय, त्रींद्रिय, द्वींद्रिय; पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति वगैरह एकेन्द्रिय जीव कम विकसित हैं; लेकिन इसी कारण यह नहीं कहा जा सकता कि वे सुख--दुःख का अनुभव नहीं करते। ' जगत् के सब जीव सुख की इच्छा करते हैं; दुःख किसी को नहीं रुचता। उन सभी को सुख प्रिय है। इसलिए दूसरों के सुख का भोग देकर अपने सुख की इच्छा करना तनिक भी न्याय-संगत नहीं है। ऐसा समझकर संसार के सब जीवों पर प्रेम दिखाओ। किसी को भी कष्ट न पहुँचाओ। '

प्रिय बालको ! जीव के विषय में इतना जान लेने के बाद तुम एक बात और भी समझ गये होंगे कि संसार के इन सब जीवों में मनुष्य सर्व--श्रेष्ठ प्राणी है। मनुष्य को ज्ञान के सभी साधन मिले हैं। उसके इन्द्रियाँ भी हैं और मन भी है। इन साधनों के द्वारा वह अपने हित—अहित को जान सकता है। और अहित को छोड़कर हित का आचरण कर सकता है। * तिर्यंचों में तो बेचारे अधिकांश मन से और पूरी इन्द्रियों से रहित हैं। जिनके मन है वे भी मनुष्य के समान, साफ तौरसे अपने हित—अहित को नहीं समझ सकते। फिर आचरण की तो बात ही दूर रही। हाँ, नारकी और देवता मन और सब इन्द्रियोंसे युक्त हैं। इतना ही नहीं बल्कि उनका जगत्-विषयक ज्ञान, स्वभाव से ही मनुष्य की अपेक्षा अधिक होता है। मगर नारकी जीव निरन्तर दुःख में डूबे रहते हैं। इस कारण उन्हें अपने हित—अहित को विचार करने का अवसर ही नहीं मिल पाता। देवता पूर्वभव के शुभ कर्मों के कारण प्राप्त हुए भोग—विलास में मस्त बने रहते हैं। इस कारण वे भी हित का आचरण नहीं कर पाते। लेकिन कर्मभूमि के मनुष्य हित — अहित का विचार करके उसे आचरण में भी ला सकते हैं। वास्तव में ऐसा मनुष्य — जीवन मिलना कठिन है। इसलिए मनुष्य—जीवन का एक भी क्षण वृथा नहीं जाने देना चाहिए। सर्वत्र शान्ति का प्रसार हो !

---

*अगर मनुष्य मिले हुए साधनों का पूरी तरह सदुपयोग करे तो मोक्ष पा सकता है। इससे विपरीत उन साधनोंका दुरुपयोग करने पर सातवें नरक का भी मेहमान बन सकता है।

सारांश

प्रिय बालकों! तुमने जगत् के जीवों की अलग-अलग जातियों का अभ्यास किया। जगत् में जो अनन्त जीव हैं, उनके अलग-अलग तरह से भेद किये गये हैं। उन भेदों को संक्षेप में इस प्रकार रख सकते हैं—

१—संसार के जीवों के चर-अचर की दृष्टि से दो भेद—
(क) त्रस अर्थात् चलने-फिरने वाले।
(ख) स्थावर अर्थात् स्थिर।

२—गति की दृष्टि से चार भेदः-
(क) नारकी (ख) तिर्यंच (ग) मनुष्य (घ) देव।

३ – इंद्रिय की दृष्टि से पांच भेदः—
(क) एकेन्द्रिय (ख) द्वीन्द्रिय (ग) त्रीन्द्रिय (घ) चतुरिंद्रिय (ङ) पंचेंद्रिय।

४—जन्म की दृष्टि से तीन भेद
(क) गर्भज-गर्भ में पैदा होने वाला
(ख) संमूर्छिम-विना गर्भ के या अशुचि में पैदा होने वाले
(ग) औपपातिक-स्वयं पैदा होने वाले देव और नारकी।

५—मन की दृष्टि से दो भेदः—
(क) संज्ञी-मन वाले और (ख) असंज्ञी विना मन के।

६—पर्याप्ति की दृष्टि से दो भेद—
(क) पर्याप्त पूरी पर्याप्ति वाले और (ख) अपर्याप्त-अधूरी पर्याप्ति वाले।

इसी तरह शरीर आदि की अपेक्षा से भी तरह-तरह के भेद किये जा सकते हैं।

जड़-सृष्टि का परिचय

जगत् के दो मुख्य तत्त्वों में से एक जीव तत्त्व पर हम विचार कर चुके हैं। जीव के साथ हमेशा जुड़ा हुआ जो दूसरा तत्त्व दिखाई देता है, वह अजीवतत्त्व है। इस अजीवतत्त्व अर्थात् जड़ द्रव्य के संबंध में यहाँ विचार करना है।

छह द्रव्य

ऊपर कहा गया है कि जगत् में दो तत्त्व हैं। लेकिन इन दो तत्त्वों का अगर कुछ विस्तार किया जाय तो उनकी संख्या छह होती है। यह छह द्रव्य कहलाते हैं।

जिन पदार्थों का कभी विनाश न हो वे द्रव्य कहलाते हैं। हमेशा कायम रहने वाले ऐसे द्रव्य छह हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं —

(१) जीव—जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है (२) धर्म (३) अधर्म (४) आकाश (५) पुद्गल और (६) काल।

इन छह द्रव्यों में जीव तो चेतन है और बाकी के पाँचों जड़ हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जीव को छोड़—कर शेष पाँच द्रव्य अजीव (जड़) तत्त्व के ही भेद हैं।

पंचास्तिकाय

ऊपर बतलाये हुए छह द्रव्यों में से, काल को छोड़कर बाकी के पाँचो द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय (३) आकाशास्तिकाय (४) पुद्गलास्तिकाय और (५) जीवास्तिकाय।

जो द्रव्य अनेक प्रदेशों का समूहरूप होता है उसे अस्ति-काय कहते हैं। जीव, धर्म, अधर्म आकाश और पुद्गल-यह पाँचों द्रव्य अनेक प्रदेशों के समूहरूप होने के कारण "अस्तिकाय" कहलाते हैं। कालद्रव्य एक प्रदेश रूप है। इस कारण अस्तिकायों में उनकी गिनती नहीं की है।

नित्य-अनित्य

ऊपर कहा जा चुका है कि हमेशा कायम रहने वाला पदार्थ ही द्रव्य कहलाता है। इससे यह तो स्पष्ट ही हो गया कि यह छहों द्रव्य नित्य हैं, शाश्वत हैं, कभी भी इनका नाश नहीं होता।

जब कोई मनुष्य या पशु प्राणी मरता है तो जीव नहीं मर जाता। जीव तो नित्य द्रव्य है। मरनेका मतलब सिर्फ इतना ही है कि जीव स्थूल शरीर से अलग हो गया। जीव (आत्मा) इस देह को छोड़कर तुरन्त ही दूसरे देह को धारण कर लेता है। जैसे हम कपड़े बदलते हैं वैसे ही आत्मा शरीर बदलता रहता है। इसलिये जीवास्तिकाय नित्य है। इसी तरह धर्मा—स्तिकाय, नित्य है। इसी तरह अधर्मास्तिकाय, आकाशा—स्तिकाय, और काल भी नित्य है।

पुद्गलास्तिकाय भी नित्य है। एक चीज भले ही मिट जाती हो मगर उसके पुद्गल तो कायम ही रहते हैं। हाँ, पुद्गल की हालतें बदलती रहती हैं। मटकी फूटती है तो ठीकरे (टुकड़े) हो जाते हैं। लेकिन मिट्टी तो कायम रहती है। मुर्दा जलकर राख बन जाता है, फिर भी पुद्गलों का नाश कभी नहीं होता।

मतलब यह है कि छहों द्रव्य नित्य हैं। उनकी हालतें (पर्यायें) पलटती रहती हैं। फिर भी द्रव्यों का कभी समूल नाश नहीं होता । पर्याय के पलट जाने पर भी द्रव्य का गुण और स्वभाव तो जैसा का तैसा ही बना रहता है।

रूपी–अरूपी

उपर के छह द्रव्यों में से पुद्गल द्रव्य के सिवाय बाकी के पाँच द्रव्य अरूपी हैं। अरूपी अर्थात् जो किसी भी इन्द्रिय के द्वारा न जाना जा सकता हो। जिस द्रव्य में रूप, रस, गंध या स्पर्श होता है, वही द्रव्य इन्द्रिय के द्वारा जाना जा सकता है। रूप, रस, गंध और स्पर्श सिर्फ पुद्गल द्रव्य में ही पाये जाते हैं, इस कारण एक वही रूपी है। बाकी के सब द्रव्य अरूपी हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल या जीव को हम किसी भी बाह्य इन्द्रिय से जान या देख नहीं सकते। मन से और आगम आदि प्रमाणों से इनका ज्ञान होता है।

पाँच अजीव द्रव्यों के भेद
(अजीव तत्त्व के चौदह भेद)

धर्म, अधर्म आकाश और पुद्गल — इन चार अजीव द्रव्यों और एक जीव द्रव्य, इस प्रकार कुल पाँच द्रव्यों के लिए "अस्तिकाय" शब्द का व्यवहार किया गया है। इसका कारण भी बतला दिया है कि यह पांच द्रव्य एक — प्रदेश रूप नहीं किन्तु अनेक प्रदेशों के समूह रूप हैं। अतएव इनके द्रव्यों के स्कंध, देश और प्रदेश, ऐसे तीन भेद होते हैं।

प्रदेश वह सूक्ष्म भाग कहलाता है, जिसके दूसरे भाग की कल्पना भी न की जा सकती हो। ऐसे अनेक प्रदेश मिल—

शय 'देश' कहलाते हैं। और अनेक देशों का समूह 'स्कन्ध' कहलाता है।

जीव, धर्म, अधर्म और आकाश के स्कन्ध, देश और प्रदेश की कल्पना की जा सकती हैं, मगर अरूपी होने के कारण उनके प्रदेश अपने-अपने स्कन्ध से जुदा नहीं हो सकते। वे देखे भी नहीं जा सकते।

पुद्गल के स्कन्ध, देश और प्रदेश अलग भी हो सकते हैं। और रूपी द्रव्य होने के कारण उन्हें हम देख भी सकते हैं। मगर पुद्गल का सब से छोटा भाग-जिसका फिर भाग न हो सकता हो परमाणु कहलाता है। इस परमाणु को देखने की शक्ति हममें नहीं है।

अजीव द्रव्यों के विषय में हम इतना जान चुके। अब विचार करना चाहिए कि वह द्रव्य जगत् की इस रंगभूमि पर क्या-क्या भाग अदा कर रहे हैं!

पाँच अजीव द्रव्यों का कार्य

(१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय

मछली अपने आप ही चलती है; मगर पानी उसकी गति में सहायक होता है। इसी तरह हम सब प्राणी और पुद्गल जिसकी सहायता से गति करते हैं, उसे शास्त्रकार धर्मास्तिकाय कहते हैं।

इसी भांति जो तत्त्व हम सब को तथा अन्य जड़ पदार्थों को स्थिर होने में मदद देता है, वह अधर्मास्तिकाय द्रव्य कहलाता है। जैसे थके हुए राहगीर को पेड़ की छाया स्थिर करने में उपकारक होती है।

(३) आकाशास्तिकाय

आकाश द्रव्य वह है, जो सब द्रव्यों को जगह देता है। जैसे पानी से भरे लोटे में थोड़ा-सा नमक डालनेपर पानी छलकता नहीं है; और नमक को जगह मिल जाती है। अथवा जैसे दीवाल ठोस चुनी हुई होने पर भी उसमें कील चली जाती है। यह सब भी आकाश का उपकार है जैनसूत्रों का कथन है कि अपने शरीर में १।३ भाग खाली है। इसीसे खानेपीने में श्वासोच्छ्वास में तथा मल-मूत्र आदि का त्याग करने में सुभीता रहता है। आकाश सर्वत्र है। ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ आकाश न हो।

(४) काल द्रव्य

कालद्रव्य की मदद से नये-पुराने की पहचान होती है। काल की अनन्त पर्यायें अर्थात् क्षण है। हम सूर्य चन्द्र की गति द्वारा काल को समझते हैं।

(५) पुद्गलास्तिकाय

संसार में हम जिन अजीव पदार्थों को देखते हैं, वे सब पुद्गल हैं। अपने शरीर में जीव और पुद्गल दोनों है यह शरीर स्वयं पुद्गल है। जब तक इसमें जीव रहा हुआ है, तब तक यह सचेतन-सजीव कहलाता है। मगर जब जीव इस देह को छोड़ देता है, तब शरीर चेतन-रहित जड़ रूप में रह जाता है।

लकडी जब वृक्ष के रूप में थी तब सचित्त थी। वृक्ष से कट जाने पर थोडी-सी ही देर मे वह अचित्त हो गई। हमारी

अलमारी, कुर्सी वगैरह सब लकडी के हैं। वह लकडी अजीव है। इसी को पुद्‌गल कहते हैं। मिट्टी, वगैरह भी जब तक पृथ्वी के साथ जुडे थे, तब तक सचित्त-सजीव थे। अलग होने पर धीरे-धीरे जड हो गये।

धूप, अंधकार और शब्द आदि भी अजीव हैं—और यह सब पुद्‌गलास्तिकाय के ही भेद हैं।

इन पुद्‌गलों के साथ जीव अज्ञान के कारण जकडा पडा है। इसी कारण यह संसार में भटकता है। मगर जब जीवात्मा अपना और जड का न्यारा–न्यारा स्वरूप समझ लेगा, तब वह जड से अलग होनेका प्रयत्न करेगा। तब वह कर्म के पुद्‌गलों से भी अलग हो जायगा और संसार-भ्रमण त्याग कर वह सिद्धगति प्राप्त करेगा कि जिसमें से फिर कभी संसार में नहीं आना पडता।

आठ कर्मों का परिचय

है कर्म असली एक ही, पर भाव पर आधार है,
अतएव आठ प्रभेद हैं पर एक का विस्तार है।
ज्ञानी जनों को जो सतावें, ज्ञान के साधन हनें,
ज्ञानावरण से लिप्त वे अज्ञान में रहते सने ॥ (१)
जो दंभ करता और करता सत्य का अपलाप है,
वह आत्मदृष्टिविहीन श्रद्धाहीन होता पाप है।

है **दर्शनावरणीय** दर्शन रोकता निज का सदा,
संयमदशा में श्रेष्ठ साधन रोकता रहता सदा ॥ (२)
जिस पुण्य से साता मिले वह **वेदनीय** विशाल है,
औ पाप-जन्य कुवेदना भी **वेदनीय** कराल है ।
साता-असाता उभय यद्यपि त्यागने के योग्य है,
समभाव रखकर भोगना साता न किन्तु अयोग्य है ॥ (३)
है **मोहनीय** वही कि जिसका मोह ममता वीज है,
राजा सरीखा कर्म यह कुज्ञान का भी वीज है ।
सद्दृष्टि के उत्पन्न होने पर तनिक टलता सही,
चारित्र की परिपूर्णता में किन्तु रह सकता नहीं ॥ (४)
जो जीव को तन में रखे, **आयुष्य** उसका नाम है,
रूपी अरूपी को बनाना **नाम** का बस काम है,
वातावरण मिलता अशुभ शुभ **गोत्र**-कर्म-प्रताप से,
वीर्यादि पा सकते नहीं नर, **अन्तराय** कु-शाप से ॥ (५)
जो शक्ति का उपयोग करता योग्य थल पाकर नहीं,
करता मगर दुर्व्यय कुथल में, अन्तराय पडे यहीं ।
अपव्यय न करके शक्ति का संचय सदा करते रहो,
उस शक्ति को सन्मार्ग में ही, खर्च फिर करते रहो ॥ (६)
मद छोड़ नम्र बनो सदा तो गोत्रकर्म बंधे नहीं,
निज काय-ममता छोड़ने से आयुकर्म बंधे नहीं ।
निर्मोहता के जन्म से ही कर्म-नाश समूल है,
फिर तन-वचन-मन-हीन पाता मुक्ति का शुभकूल है ॥ (७)

नवतत्त्व-परिचय

जीव वही जो सुख-दुःख जाने ।
लक्षण जिसका ज्ञान वखाने ।।
है अजीव सुख-दुःख विहीना ।
जड़ता लक्षण उसको दीना ।।१।।

पुण्य सुकार्य परम सुख दाता ।
पाप कुकार्य सभी दुःख लाता ।।
शुभ अरु अशुभ कर्म जो आवे ।
आस्रव नामक तत्त्व कहावे ।।२।।

संवर तत्त्व कर्म रुकवावे ।
अंगों में निर्जरा खिरावे ।।
राग द्वेष अरु मोह विकारा ।
बांधे जीव कर्म दल भारा ।।३।।

बंधतत्त्व है इसका नामा ।
करता है यह जीव निकामा ।।
कर्म छूट सुख मिले अनन्ता ।
मोक्ष कहे इसको सब सन्ता ।।४।।

❋ कथा–विभाग ❋

पाठ पहला

सती मृगावती

पति सेवा पूरी करो, पालो शील महान् ।
रखो वीरता त्याग में, जो चाहो कल्याण ।।

'अहा ! कितना सुन्दर चित्र ह ! संसार में इस सुन्दरी के समान कौन होगा ?' चित्र देखने वाला इस प्रकार कहता था। उसका नाम था चंडप्रद्योतन । वह अवंती का राजा था कौशाम्बी के राजा शतानीक की रानी मृगावती का वह चित्र था। यह शिवादेवी की बहिन होती थी। शिवादेवी अवंती की रानी थी। अवंती का राजा चंडप्रद्योतन मृगावती का बहिनोई था। एक तो परायी स्त्री और रिश्ते में साली होने पर भी चंडप्रद्योतन के मन में खराब भावना उत्पन्न हुई ।

एक बार की बात है । राजा शतानीक और रानी मृगावती दोनों बैठे थे। पास में कुमार उदयन खेल रहा था। तीनों आनंद में थे। इसी समय राजा का दूत खबर लाया कि अवंती के राजा ने बडी भारी फौज के साथ चढ़ाई कर दी है। अचानक यह समाचार सुनकर राजा शतानीक कुछ घबराया ।

मृगावती ने राजा को हिम्मत बँधाई । राजा को प्रजा की ओर से भी अच्छी सहायता मिली । थोड़े समय में लड़ाई आरम्भ हो गई ।

कौशाम्बी के किले के चारों तरफ अवंतिपति की विशाल सेना पड़ी है । किला अब टूटा, अब टूटा, ऐसा जान पड़ता था; फिर भी दिन बीतते जाते थे । इस कारण विशाल सेना भी हिम्मत हार बैठी थी । इसी समय एक दुर्घटना हो गई । राजा शतानीक को एक असाध्य रोग हो गया । मृगावती ने उसकी तन मन से सेवा की । अन्त तक धर्म सुनाया । कैसी अगाध पतिभक्ति ! मृत्यु नजदीक आई और राजा परलोकवासी हो गया । अब मृगावती और उदयन कुमार बाकी रहे ।

चारों तरफ लोगों में उदासी छाई हुई थी । प्रजा भी हिम्मत हार चुकी थी । रानी इस परिस्थिति को भली भाँति समझती थी । उसने लाचार होकर अवंतिपति के पास संदेश भेजा-हम सुलह करने को तैयार हैं । आप क्या चाहते हैं ?' अवन्तिपति को न अधिकार की इच्छा थी, न धन दौलत की । उसे तो मृगावती का रूप चाहिए था । उसने रानी से रूप की माँग की । ऐसी पवित्र स्त्री को भी कैसी अग्निपरीक्षा में से गुजरना पड़ता है । जो मनुष्य कसौटी पर चढ़कर खरा उतरता है वही अपने जीवन को उन्नत बना सकता है ।

रानी मृगावती ने उत्तर भिजवाया- 'बारह महीने तक धीरज रखिये । उसके बाद मैं आपको जवाब दूंगी ।

राजा ने मन में सोचा-'उसे लोक-लाज तो रखनी ही पड़ेगी । उसके पति का देहान्त हो गया है । मेरे पास आने के

सिवाय उसे और कोई चारा नहीं है। 'इस विचार से राजा को सन्तोष हुवा। मगर राजा को पता नहीं था कि मृगावती के शरीर में जब तक आत्मा है, तब तक उसका शरीर वह नहीं पा सकता, क्योंकि वह सती स्त्री है। हृदय को पवित्र रखना सतियों की अटल टेक है। इसीलिए शास्त्र में कहा है—सतियों का जीवन पवित्र होते हुए भी अगर उनके ऊपर कोई कलंक लगाया जाता है तो भी वे अपने जीवन को दिपाती हैं।

'सिर जावे तो जावे पर शील कभी नहीं जावे' मृगावती में इसी प्रकार की भावना थी।

बारह महीनों में मृगावती ने प्रजा को फिर तैयार किया। सती के प्रताप से फौज तैयार हो गई।

बारह महीना बीतते ही अवंतिपति का दूत आ धमका। उसने जब मृगावती का अंतिम निर्णय सुना तो ठंडा पड़ गया अंवतिपति को इस बात की खबर लगी तो वह क्रोध से पागल हो उठा। उसने फिर चढ़ाई कर दी। उसे क्या पता था कि इस बार कौशाम्बी का तेज और शौर्य कुछ निराला ही है।

युद्ध हुवा और उसमें अनेक पुरुष मारे गये। ऐसे समय भगवान् महावीर विचरते विचरते वहाँ पधार गये। पूर्ण अहिंसा का पालन करने वाले, सत्य बोलने वाले और प्राणी मात्र पर प्रेम रखने वाले भगवान् महावीर ने अनेकों को उबारा था। उनके लिये समझाना कठिन नहीं था। उन्होंने उदाहरण देकर शान्ति और क्षमा के साथ दोनों पक्ष वालों को समझाया।

भगवान् के समझाने से दोनों तरफ की खून-खराबी रुक गई। अपनी-अपनी भूल के लिए सबको पछतावा हुवा।

मगर बात यहीं समाप्त नहीं हुई। मृगावती रानी के दिल में वैराग्य उत्पन्न हुआ। मृगावती ने शीलव्रत की तरह अहिंसा का भी पालन किया। भगवान् महावीर की पट्ट शिष्या साध्वी चन्दन-बाला के पास महारानी–राजमाता मृगावती ने दीक्षा ली। आत्मा का कल्याण किया। साध्वियों के व्रतों को उज्ज्वल किया।

सोलह सतियों में उनका नाम भी अमर हो गया है। उनका प्रतिदिन स्मरण किया जाता है।

पाठ दूसरा

पतिभक्ता चेलना

रूप का भण्डार कुमारी चेलना वैशाली के राजा चेटक की पुत्री थी। उसके दाँत अनार की कली जैसे थे। उसका गुलाबी रंग खिले हुए गुलाब के फूल के समान दिखाई देता था। जो उसे देखता वही उसकी सुन्दरता का बखान करता।

उस समय मगधदेश में श्रेणिक नामक राजा राज्य करता था। वह बहुत बलवान् था। चेलना कुमारी के साथ उसका विवाह हुआ, श्रेणिक ने चेलना को अपनी पटरानी बनाई। श्रेणिक और चेलना में बहुत गहरा प्रेम था। राजा चेलना के बिना रह नहीं सकता था।

घोर अन्धेरी रात थी। सर्दी की ऋतु थी। चारों ओर वातावरण में शांति थी। रानी गहरी नींद में सो रही थी।

उस समय उसका हाथ उसकी मुलायम रजाई में से बाहर निकल गया। थोडी देर हाथ बाहर पडा रहने से बरफ की भांति ठण्डा हो गया। रानी एकदम चौंक कर जाग उठी। उसने चट से अपना हाथ रजाई में छिपा लिया।

चेलना एक सुसंस्कारी पिता की पुत्री थी। अतएव उसके दिल में विचार आया—मेरे चारों ओर मजबूत दीवालें खडी हैं। उनके भीतर छतरीदार पलंग है। अढ़ाई मन रूई के गद्दे पर मैं सो रही हूँ। ऊपर से रजाई ओढ रक्खी है। फिर भी मुझे ठण्ड मालूम देती है तो मेरे राज्य में खुले में सोनेवाले गरीब प्रजा का क्या हाल होगा ? और सिर्फ एक वस्त्र पहनकर बगीचे में रहने वाले उन मुनिराज की क्या स्थिति होगी ? वह मुनि किसी श्रीमंत के पुत्र से मालूम होते हैं। वे इस कड़ाके की सर्दी को किस प्रकार सहन करते होंगे !'

चेलना के अन्तिम शब्द ऊँघ ही ऊँघ में राजा श्रेणिक ने सुन लिये। जो पुरुष अत्यन्त प्रेमी होता है वह ऐसे शब्द नहीं सुन सकता। उसे भ्रम हुआ कि रानी किसी दूसरे पुरुष के विषय में विचार कर रही है। ऐसे भ्रम से उसके क्रोध का पार न रहा। क्रोध ही क्रोध में उसने बडी कठिनाई से रात पूरी की। भोर-सुबह होते ही वह उठ कर चला गया। उसने अपने पुत्र अभयकुमार को बुलाया। अभयकुमार के आने पर राजा ने आज्ञा दी – 'रानी चेलना के महल को इसी वक्त सुलगा दो।

अभयकुमार था बुद्धिमान। वह जानता था, कि "राजा बाजा और बन्दर भान भूल जाते हैं तो किसी के नहीं होते" समय टालने के लिए उसने कहा—पिताजी ! भगवान् महा-

वीर का उपदेश सुनकर अवश्य आपकी आज्ञा का पालन करुंगा। राजा और मन्त्री अभयकुमार भगवान् महावीर का उपदेश सुननें गये। उपदेश सुनकर राजा का मन शान्त हुआ। दूसरे लोग चले गये, श्रेणिक राजा बैठा रहा। तब भगवान् महवीर ने कहा—'राजा तेरे मन की शंका खोटी है। शान्त हो, शान्त हो और विचारकर।; यह सुनकर राजा का गुस्सा उतर गया। उसने जो आज्ञा दी थी उसके लिए पछताने लगा। उसने सोचा — अभयकुमार जैसा बुद्धिशाली मन्त्री न होता तो चेलना जैसी पवित्र स्त्री जलकर भस्म हो गई होती नीति में ठीक कहा है:—

जाको राखो साईयां मार सके नहिं कोय

इस घटना के बाद राजा और रानी में खूब प्रेम बढा। उनके तीन बालक थे। उनमें से एक का नाम कोणिक था। कोणिक जब गर्भ में था तो रानी को बहुत बुरे विचार आया करते थे। अतएव रानी ने विचार किया कि, यह पुत्र कुल को कलंक लगावेगा। और अन्त में वही हुआ। कौणिक जब बडा हुआ तो जाल रच कर उसने अपने पिता श्रेणिक को कैदखाने में डाल दिया। अब उसे शान्ति मिली। चेलना ने उसे बहुत समझाया। मगर माता के उपदेश का और रोने धोने का उस पर तनिक भी असर नहीं पडा। दुखनी चेलना हमेशा जेल में भोजन ले जाती और श्रेणिक को खिलाती थी इस तरह कई वर्ष बीत गये।

एक बार कोणिक राजा अपने बालक को गोद में लिये बैठा था। प्रेम से उसे चूम लेता था। बालक खिलखिला कर हँस पडता था। उसी समय चेलना वहाँ आ पहुँची। आनन्द

में मस्त कोणिक ने मजाक में चेलना से पूछा—'माँ ! मेरे पिता ने भी कभी मुझे इस तरह लाड लड़ाया था ?' चेलना ने कहा—'बेटा जैसे तू अपने लड़के को लाड लड़ाता है, उसी तरह तेरे पिताजी ने भी तुझे लाड़-प्यार किया था।' यह सुन कर कोणिक एकदम चौंक उठा, मानो बिजली का आघात लगा हो ! उसे पिता का प्रेम याद आया। पिता को बंधन से मुक्त करने के लिए वह स्वयं कुल्हाड़ा लेकर दौड़ा। वह सोचने लगा—कब मैं पिताजी को बन्धन से मुक्त करूँ और कब उनके गले लगूं। उसका हृदय प्रेम के आवेश से भर गया और वह जेल खाने की तरफ दौड़ चला।

जेल में राजा श्रेणिक के हाथों में हथकड़ियां और पाँवों में बेड़ियां पड़ी थीं। वह धीरे-धीरे इधर-उधर घूम रहे थे। वह कभी लड़के को और कभी अपनी तकदीर को याद कर रहे थे। अचानक उनकी नजर दौड़कर आते हुए कोणिक पर पड़ी। उन्होंने देखा कि उसके हाथ में कुल्हाड़ी भी है। श्रेणिक ने सोचा —कोणिक मुझे मारने आ रहा है। आह ! संसार कितना स्वार्थी है ! यहाँ पुत्र पिता को पहचानता नहीं, भाई को भाई की परवाह नहीं है ! सत्ता और सम्पदा के लिए मनुष्य नीच से नीच कृत्य करने को तैयार हो जाता है ! कोणिक के हाथ से मरने की अपेक्षा अपने हाथों मरना अच्छा है। यह विचार कर श्रेणिक ने लोहे की हथकड़ी से अपना मस्तक भड़ाक से मार लिया। रक्त की धारा बहने लगी।

कोणिक जब जेल के द्वार पर पहुँचा तो उसने यह करुण दृश्य देखा। श्रेणिक बेभान थे ! कोणिक अपने पिता की दिल दहलाने वाली दशा देखकर रो पड़ा। अब वह कितना ही क्यों न रोवे, मृत देह क्या फिर जीवित हो सकता था ?

रानी चेलना को जब यह खबर मिली तो उन्होंने सोचा-संसार बड़ा स्वार्थी है। क्या संसार में ऐसा कोई मार्ग नहीं है जहां मनुष्य सब तरह के वैर-विरोध को भूल जाय और सब के साथ प्रेम पूर्वक रहे?' चेलना के हृदय में वैराग्य हो आया। उस समय भगवान् महावीर का युग था। सत्य का पालन किया जाता था। अहिंसा ने प्रत्येक के हृदय में स्थान प्राप्त किया था। प्रेम और धर्म का पाठ पढ़ाया जाता था। इसलिए चेलना ने भगवान् महावीर का ही रास्ता पकड़ने का निश्चय किया।

चेलना भगवान् महावीर के उपदेशों के अनुसार चलने लगी। वह पति के पीछे रोने नहीं बैठी किन्तु स्वार्थी संसार को सच्चा मार्ग दिखाने के लिए तैयार हुई और आर्यिका बन गई॥

धन्य है उसकी उत्कृष्ट भावना!

पाठ तीसरा

सती अंजना

संकट कलंक सहे मगर, तजी न पति की प्रीति।

धन्य मात हनुमान की, रखी सती की रीति॥

राजा महेन्द्र के घर शहनाइयां बजने लगीं। चहुँ ओर बाजों की मीठी ध्वनि सुनाई देने लगी। राजा महेन्द्र की अटारियों पर और सभी दरवाजों पर अशोकवृक्ष के पत्तों के

तोरण बाँधे गये। राज्य के अधिकारी खुशी में मस्त हो गये। कोई अपनी मूछों पर ताव दे रहा था, कोई नौकरों को हुक्म दे रहा था। देश देश के राजाओं को राजा महेन्द्र ने न्यौता दिया था। न्यौता स्वीकार कर सब राजा उपस्थित हुये थे। सब नगर-निवासी आनन्द में मग्न थे। कोई नागरिक पूछता भाई, लडकी के विवाह में राजाजी इतनी धूमधाम क्यों कर रहे हैं ? क्या महाराज को लड़की; लड़के से ज्यादा प्यारी है ? लड़के के विवाह में तो इतनी धूमधाम कभी नहीं हुई थी।

दूसरा उत्तर देता-प्यारी क्यों नहीं होगी ? राजा के कई लड़कों के जन्म के वाद यह एक ही तो कन्या हुई है। वहुत पुण्य से उसका जन्म हुआ है। वह कन्या वड़भागिनी जान पड़ती है।

उसी रात में अंजना का विवाह प्रल्हाद राजा के लड़के पवनजी के साथ हो गया। अंजना के सगे संवधियों ने वर-वधू को आशीर्वाद दिये। अंजना की विदाई हो गई। भोली अंजना आशीर्वाद को देव का आशीर्वाद समझकर घर आई स्त्री के दो घर होते हैं। जव वह वालिका होती है तो पिता के घर में रहती है। वडी होने पर सासरे चली जाती है। अंजना पति के घर आई। पहले तो उसके दिन शान्ति के साथ वीते, लेकिन वाद में उस पर अनेक संकट आये।

एक दिन अंजना अपनी सखी के साथ वातें कर रही थी। उसने कहा-वसन्तमाला ! विद्युत्प्रभा भी वास्तव में देव के अवतार हैं। उनका संयम कितना ऊँचा है। किसी भी उपाय से कोई उनका संयम नहीं छुड़ा सकता। उनका संयम दर असल प्रशंसनीय है।

इसी समय अचानक पवनजी आ पहुंचे। उन्होंने विद्युत्प्रभा की तारीफ सुनी। स्त्री जब दूसरे पुरुष की तारीफ करती है तो उसके पति को वह तारीफ सहन नहीं होती। पवनजी ने यह बात सुन ली थी। वे बहुत क्रुद्ध हुए। क्रोध ही क्रोध में वे अंजना को परस्त्री समझने लगे। बहुत वर्ष बीत गये मगर पवनजी अंजना के महल में नहीं गये। पवित्र हृदय ऐसे झूठे आरोप को कैसे सह सकता था? किन्तु आखिर अंजना सती स्त्री थी। उसे पिता से सुन्दर संस्कार मिले थे। उन संस्कारों ने उसे खूब धीरज बँधाई। उसने तनिक भी हिम्मत न हारी। मन में पति का ही स्मरण किया करती। इस तरह बारह वर्ष बीत गये।

पवनकुमार अपना अधिक समय राज्य के काम काज में अथवा युद्ध में व्यतीत करते थे। युद्ध के मैदान में लड़ना उन्हें खिलवाड़ मालूम होता था। एक बार उन्हें किसी दुश्मन पर चढ़ाई करनी थी। सेना हवा की तरह आगे बढ़ती जा रही थी। इतने में रात हो गई। सेना सो गई। पवनजी भी पेड़ के नीचे सोये। पर उन्हें नींद नहीं आई। वे विचारों में डूबे थे। पवनजी जिस पेड़ के नीचे सो रहे थे, उस पर चकवी का एक घोंसला था। चकवा और चकवी आनन्द कर रहे थे। थोड़ी देर बाद चकवा उड़ गया। चकवी ने अपने पंखों से उसे रोकने की कोशिश की, मगर चकवा नहीं माना। वह निर्दय होकर उड़ गया। चकवी को बहुत दुःख हुआ और वह अपना सिर धुनने लगी। पंख फड़फड़ाने लगी। चकवी की यह हालत देख पवनजी सोचने लगे-इस चकवी को पति का वियोग इतना साल रहा है तो बेचारी अंजना की क्या हालत होगी, जिसे मैंने बारह वर्ष से त्याग रक्खा है! क्या

वह मेरे लिए नहीं रोती होगी ? हाय, मैं क्या एक पक्षी से भी गया-बीता हूं !

उसी समय पवन ने अपने मित्र को जगाया। रातों रात अंजना के पास जाने का प्रबन्ध किया। एक ओर सुबह दुश्मन पर फौज ले जाकर हमला करना था और दूसरी ओर पत्नी का प्रेम जीतना था और अंजना सम्बन्धी गलत विचारों को दूर करके उसे निर्दोष सिद्ध करना था। पवन अंजना से मिलने के लिये बेचैन हो गया। उस समय भी आकाश में विमान चला करते थे। पवन अपने मित्र के साथ विमान से उड़कर अंजना के महल के पास पहुँचा। मित्र को नीचे बगीचे में बिठला कर आप महल में पहुंचा।

इस समय सब लोग गाढी नींद में सो रहे थे। मगर अंजना उस वक्त भी भगवान् का ध्यान कर रही थी दासी ने आकर उसे समाचार दिया—राजकुमार पवनजी पधार रहे हैं।' यह सुनते ही अंजना घबड़ा गई। उसके दिल में अनेक अनिष्ट विचार आने लगे। इतने में पवनकुमार पास में आ पहुंचे। उनके चेहरे पर स्नेह और प्रसन्नता का भाव देखकर अंजना के जी में जी आया। उसके सूखे चेहरे पर आनंद उछलने लगा। आँखों से प्रेम के आँसू वह निकले। उसका गला रुंध गया। पवनजी के आने पर वह सत्कार करने के लिये एक भी शब्द न बोल सकी। चुपचाप वह पति के चरणों में गिर पड़ी आँखों से गिरने वाले पानी से उसने पति के पैर धोये। पवनजी ने अंजना को खड़ा किया। कहने लगे—अंजना ! तू देवी है। मेरे जैसे अन्यायी पति के दोषों को भी तू भूल गई ! वास्तव में तेरी पति भक्ति धन्य है। मेरे जीवन को धिक्कार है !'

रुंधे हुए कंठ से अंजना बोली—नाथ ! ऐसा मत कहिए। यह तो मेरे कर्मों का दोष है। इसमें आप क्या करते ? आज मेरे जीवन में यह आनन्द का दिन है कि मुझे त्यागी हुई को आप फिर अपने चरणों में स्थान दे रहे हैं।

दोनों एक दूसरे के दोषों को भूल गये। बहुत वर्षों बाद दोनों हृदय फिर मिले। सुबह होते ही पवन को सेना के पास पहुँचना था। अंजना ने उसे कर्तव्य-पालन से नहीं रोका। जाते समय यादगार के रूप में पवनजी ने अंजना को अपने हाथ की अंगूठी दी। अंजना ने आँसुओं से पवनजी को विदाई दी।

पवनकुमार उस रात को अंजना से मिले हैं, यह किसी को मालूम नहीं हुआ था। अंजना गर्भवती हो गई थी। कुछ महीने बीत गये। सासू को अंजना की हालत का ख्याल आया। उसके मन में सन्देह हुआ—पवन ने बारह वर्ष से अंजना को छोड़ रक्खा है। फिर अंजना गर्भवती कैसे हो गई ? अंजना ने पवनकुमार की अंगूठी बतलाई। सच्ची-सच्ची घटना कही। मगर सासूको विश्वास नहीं आया। सारे शहर में यह बात फैल गई। निर्दोष अंजना के माथे पर कलंक का टीका लग गया। सासू-सुसर ने उसे घर से निकाल दिया।

बेचारी अंजना अपने मां-बाप के घर पहुँची ! मगर मां-बाप ने उसे कलंकिनी समझ कर घर में नहीं आने दिया। अंजना ने विचार किया—अभी मेरे भाग्य में बहुत दुःख भोगने बदे हैं। जिन पिता ने पानी की तरह पैसा बहाकर मेरा विवाह किया था वही पिता मुझे कुलटा कह कर निकाल रहे हैं। जिन सगे-संबंधियों ने 'अखण्ड सौभाग्यवती' के आशीष

दिये थे, वे आज उसे पापिनी और पिशाचिनी समझकर मुँह भी नहीं देखना चाहते।

अंजना राजा की पुत्री और राजकुमार की पत्नी थी। लेकिन आज उसे कोई आश्रय देने वाला नहीं था। यह अन्याय सहन न कर सकने के कारण वह नदी में डूब मरने के लिये रवाना हुई। नदी में कूदकर प्राण त्याग देने का विचार किया वह नदी में छलांग मारने को ही थी कि अन्तिम क्षण उसे एक नया विचार आया— मैं निर्दोष हूँ, निष्कलंक हूँ। मेरे पेट में पति की धरोहर है। इस धरोहर के कारण समाज मुझे कलंकित करता है तो भले करे, मुझे पतिदेव की धरोहर को नष्ट करने का क्या अधिकार है? मुझे उसकी रक्षा ही करनी चाहिए।'

ऐसा विचार करके उसने समाज का त्याग करके जंगल की राह ली। वहीं एक बहुत सुन्दर पुत्र का जन्म हुआ। वह जंगल में बड़े ही प्रेम से अपने पुत्र का पालन-पोषण करने लगी।

जिस माता के संस्कार अच्छे होते हैं, उसके पुत्र के संस्कार भी स्वाभाविक रूप से अच्छे होते हैं।

एक दिन हनुपुर का राजा शूरसेन उधर होकर कहीं जा रहा था। उसने अपनी भनेजन (बहिन की लड़की) अंजना को दुःखमय स्थिति में देखी। वह उसे अपनी लड़की समझकर अपने घर ले गया। शूरसेन अंजना का मामा था।

अंजना और हनुमान कुछ वर्षों तक शूरसेन के ही घर रहे। हनुमान ने शूरसेन से शस्त्रविद्या सीखी और वह बड़ा होनहार मालूम होने लगा।

उधर पवनकुमार युद्ध करके और शत्रुओं को जीत कर वापिस लौटे। वह आते ही अंजना के महल में गया। वह बहुत प्रसन्न था। बहुत वर्षों बाद आज वह अंजना से मिलने जा रहा था। अंजना कैसी होगी? क्या कर रही होगी? इस तरह मन में सोचता हुआ वह अंजना के अन्तःपुर तक जा पहुँचा। दरवाजे के पास अंजना की पुरानी दासी बैठी थी। उसने भरे हुए कंठ से अंजना का सारा किस्सा कह सुनाया।

अंजना का वृत्तान्त सुनकर पवनकुमार को बहुत दुःख हुआ। संसार पर से उनका प्रेम उठ गया। दिल में वैराग्य हो गया। वह उसी समय, उसी हालत में, अंजना को खोजने चल पडे। बहुत तलाश करने के बाद अंजना का पता लगा। वह अंजना से मिले। दोनों फिर बड़े प्रेम से मिले। अन्त में दोनों को वैराग्य हो गया। दोनों ने दीक्षा ग्रहण की। अंजना और पवनकुमार को देखकर उनकी पुरानी दासी भी विरक्त हो गई। उसे भी संसार फीका लगा। इसी तरह तीनों ने एक साथ दीक्षा ले ली।

अंजना ने पति से अपमानित होकर भी कभी पति के प्रति बुरा विचार नहीं किया। उस सती ने अपने उच्च आचार के द्वारा नारी-समाज का गौरव बढ़ाया। संसार का विचित्र स्वरूप देखकर अन्त में दीक्षित होकर जीवन सार्थक किया।

धन्य है भारत की, ऐसी देवियों को!

धन्य है भारत के ऐसे प्रतापी पुत्रोंको!!

पाठ चौथा

अर्जुन माली

अर्जुन माली नित करे, सात मनुज संहार,
हत्यारा पागल मचा, बेहद हाहाकार ।
वन्दन करने को चला, आये वीर जिनेश,
सेठ सुदर्शन मृत्यु से, डरा नहीं लव-लेश ।
अर्जुन दौड़ा शस्त्र ले, मगर चला नहीं नेक,
महावीर-सत्संग से, पाया विमल विवेक ।

एक बगीचा था । उसमें भाँति-भाँति के फूल खिले थे । कहीं गुलाब, कहीं मोगरा तो कहीं केवड़ा खिला हुआ था । बगीचा बहुत सुन्दर दिखाई देता था । जो कोई आता, अर्जुन माली के बगीचे की तारीफ किये बिना न रहता ।

अर्जुन माली की हालत बदली । उसके स्वभाव में भी परिवर्त्तन होने लगा । पहले वह शान्त था, अब क्रोधी बन गया । क्रोध का मारा वह पागल-सा रहता । एक बार क्रोध में आकर उसने अपनी स्त्री को मार डाला और छह मनुष्य का भी खून कर दिया ।

जो कोई देखता, अर्जुन माली को पागल समझता । उसने बगीचे का काम करना छोड दिया । सारे दिन गदा लेकर घूमा करता और सांझ होने तक एक स्त्री और छह पुरुषों की हत्या कर डालता था ।

यह बाग राजगृह, नगर के बाहर, थोडी दूरी पर था। श्रेणिक जैसे प्रतापी राजा का वहाँ शासन था। उस बगीचे में हजारों आदमी आते और आनंद प्राप्त करते थे।

बाग में यक्ष का मन्दिर था। वह बड़ा ही मनोहर था! उसके शिखर की सुन्दरता का क्या कहना है! बहुत लोग पूजा करने के लिए वहाँ आया करते थे। इस तरह वहाँ लोगों का आवागमन जारी ही रहता था।

सात मनुष्यों की हत्या हो जाने के कारण लोगों ने उस बगीचे में आना-जाना छोड़ दिया था। अतएव बगीचे के फाटक बंद कर दिये गये थे।

इस बगीचे से कुछ ही दूरी पर भगवान् महावीर पधारे। श्रेणिक के और राजगृह के दूसरे लोगों को भगवान् के दर्शन करने की बहुत इच्छा हुई। लेकिन जाने की हिम्मत कोई नहीं कर सकता था। अर्जुन माली का बाग जो बीच में आता था।

उसी नगर में सुदर्शन नामक एक सेठ रहते थे। उन्होंने भगवान् के पधारने की खबर सुनी। प्रसन्नता का पार न रहा। वे भगवान् का दर्शन करने के लिए जाने को तैयार हुए और चल दिये। नगर का फाटक बन्द था। अपने ऊपर जोखिम लेकर उन्होंने फाटक खोला। लोग कहने लगे—यह सेठ मरने जा रहा है! देखो न इसने फाटक खोल लिया!

छतों पर चढ़कर लोग देखने लगे। सभी लोग समझते थे कि अर्जुन माली के शरीर में यक्ष घुसा है और इसी कारण उसमें बहुत बल बढ़ गया है। लेकिन सुदर्शन सेठ को तनिक भी डर नहीं था। वह समझते थे कि जो जन्मा है वह किसी

न किसी दिन अवश्य मरेगा। फिर मरने से डरने की आवश्यकता क्या है!

सुदर्शन सेठ को सामने से आता देख अर्जुन माली गदा तानकर दौड़ा। पास आकर उसने अपनी मोटी गदा उठाई। छतों पर चढ़े लोग देख रहे थ और कांप रहे थे। वे चिल्ला रहे थे-मरे, सुदर्शन सेठ अब मरे। ए! वह गिरने ही वाले हैं!

सुदर्शन सेठ ने अपनी मृत्यु नजदीक आई देख प्रभु का स्मरण किया। उन्होंने मन ही मन कहा—मैं चार शरण ग्रहण करता हूँ। चार शरण इस प्रकार हैं:—

(१) अरिहंतों का शरण
(२) सिद्धों का शरण
(३) साधुपुरुषों का शरण
(४) वीतराग—धर्म का शरण

कैसी सुन्दर प्रतिज्ञा है! और कैसा दृढ़ निश्चय है!

सुदर्शन शेठ के हृदय में गहरी श्रद्धा थी। अर्जुन माली उनकी श्रद्धा देखकर चकित रह गया। उसे लगा, मानो यह कोई योगी है। अब उसका क्रोध उतर गया। वह शान्त और स्वस्थ हो गया। सुदर्शन सेठ के पैरों में गिर पड़ा। छतों पर चढ़ लोग यह अद्भुत तमाशा देखकर आश्चर्य में डूब गये। अर्जुन माली का परिवर्त्तन देखकर सुदर्शन सेठ ने कहा 'चलो मेरे गुरुजी आये हैं।'

अर्जुन ने सोचा-यह मनुष्य इतना वैरागी है तो इसके गुरु कितने वैरागी होंगे? देख ही क्यों न आऊँ? ऐसा विचार कर वह सुदर्शन के साथ-साथ चल दिया।

अर्जुन माली भगवान् के पास पहुँचा: भगवान् ने उसको ही लक्ष्य करके उपदेश दिया कि—मनुष्य अपने पापों को भोगे विना छुटकारा नहीं पा सकता। चाहे इस भव में भोगे, चाहे पर भव में।

अर्जुन माली को अपने पापों की याद आई। वह दुखी हो गया। यह जानकर भगवान् ने कहा—दुखी मत हो। अर्जुन माली के दिल में आया कि मैं इनका चेला बन जाऊँ। उसने कहा—आप मुझे स्वीकार करेंगे? भगवान् तो उसे सुधारना ही चाहते थे। उन्होंने कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा हो, करो।

अर्जुन माली दीक्षा लेकर साधु बन गया।

कहाँ प्रतिदिन सात आदमियों की हत्या करने वाला पागल अर्जुन और कहाँ कीडी-मकोड़ी कुचल न जाय इस भावना से देख-देखकर पैर रखने वाला मुनि अर्जुन! धर्म में कितनी शक्ति है!

अर्जुन जब गाँव में भिक्षा लेने जाता है तो लोग उसका अब भी तिरस्कार ही करते हैं। लोगों को उस पर अब भी विश्वास नहीं होता! बहुत से लोग उसे मारने दौड़ते हैं। कोई कहते हैं, अरे! इसी हत्यारे ने मेरे भाई का खून किया था। कोई चिल्लाती-इस दुष्ट ने मेरे पति की हत्या की थी! इसी तरह कह-कह कर मुनि को लोग बेहद कष्ट पहुंचाते और कोई कोई अपने घर के द्वार बन्द कर लेते।

अर्जुन मुनि धीरज के साथ सब सहन करते थे। वह सोचते अपने पापों का फल अभी भोग लूं-जिससे बाद में न

भोगना पड़े ! वह अपने पिछले कृत्यों के लिए घोर पश्चात्ताप करते थे। यों करते-करते अर्जुन के सब पाप भस्म हो गये। उन्हें केवल ज्ञान हुआ। सब कर्म खिर गये और मोक्ष प्राप्त हुआ।

अर्जुन माली का वेड़ा पार हो गया !
सुदर्शन जैसी निर्भयता सीखो !
अर्जुन माली जैसा पछतावा सीखो !
प्रभु महावीर जैसे पतितपावन गुरु हों।

पाठ पाँचवाँ

भरत और बाहुबली

ऋषभदेव सुत भरतजी, और बाहुबली जान।
बाहूबली को जीतने, किया भरत अभिमान ॥
दो भाई लड़ने लगे, वहीं जगा वैराग।
दीक्षित हो करने लगे, बाहुबली तप सार ॥
आत्मज्ञान के सूर्य में, विघ्न बना अभिमान।
पर बहिनों के बोध से, अलग हुआ अभिमान ॥
हुए बाहुबली केवली, पाया पद निर्वाण।
तदनु भरत भी हो गये, पाकर सिद्धि महान् ॥

श्री ऋषभदेव के दो बडे पुत्र थे-भरत और बाहुबली। दोनों की माताएँ अलग-अलग थीं।

पिता ने दीक्षा लेने के पहले राज्य का बँटवारा कर दिया। भरत को अयोध्या का और बाहुबली को तक्षशिला का राज्य सौंपा।

भरत के यहाँ चक्ररत्न उत्पन्न हुआ जिससे उसको चक्रवर्त्ती राजा बनने की प्रेरणा मिली उसने सब को जीत लेने का विचार किया। बाहुबली ठहरे सगे भाई और फिर जैसा उनका नाम वैसे ही बलवान्।

भरत ने बाहुबली को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए कहा। मगर बाहुबली कब झुकने वाले थे? उन्होंने कहला भेजा-'छोटे भाई की हैसियत से आपके सामने झुकूंगा, मगर राजा की हैसियत से नहीं झुक सकता।'

भरत ने सोचा–जब और सभी राजाओं को जीत लिया है तो फिर बाहुबली को भी क्यों न जीत लूं? यह सोच-कर भरत ने फौज तैयार कराई। यह समाचार सुनकर बाहु-बली ने भी अपनी सेना सजाई।

दोनों की फौजें लड़ने को तैयार हुईं। उसी समय प्रथम स्वर्ग के इन्द्र की प्रेरणा से बाहुबली को यह खयाल आया कि बेचारे निर्दोष सैनिकों का खून बहाने से क्या लाभ है? हम दोनों ही आपस में क्यों न लड़ लें? भरत को यह संदेश भेजा गया। भरत भी इसके लिए तैयार हो गए।

दोनों ने निश्चय किया–'हम दोनों में जो पहले आँख मीचे वही हारा।' दोनों में होड़ मची। भरत की आँखों में से

पानी निकलने लगा और अन्त में उनकी आँख मिच गई। भरत लज्जित हुए। चक्रवर्ती राजा होने के बदले हार हो गई! भरत को इससे बडी निराशा हुई!

बाहुबली ने कहा—यों नहीं, हम आपस में मुट्ठियों का प्रहार करें।

भरत 'हाँ, ठीक है।' कह कर तैयार हो गये। भरत ने मुट्ठी उठाई और कसकर बाहुबली को मारी। बाहुबली जमीन पर गिर पडे। उठकर उन्होंने भी मुट्ठी उठाई। मगर उनका हाथ ज्यों का त्यों उठा रह गया। उन्हें अचानक विचार आया-अरे! मैं अपने भाई पर हाथ उठा रहा हूँ! और फिर उन्होंने उसी उठे हुए हाथ से अपने मस्तक के बाल उखाड लिये। उन्होंने साधु होने का पक्का विचार कर लिया।

इससे भरत को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने बाहुबली से कहा—भैया मुझे नहीं चाहिए यह राज्य पाट और नहीं चाहिए यह चक्र राज्य! मगर बाहुबली अब मानने वाले नहीं थे। उन्हें त्याग में ही आनन्द मालूम होता था।

भगवान् ऋषभदेव उस समय तीर्थंकर के रूप में विचर रहे थे। बाहुबली के दूसरे छोटे भाई पहले ही दीक्षित हो गये थे। वे सब भगवान् ऋषभदेव के शिष्य बने थे।

बाहुबली मुनि त्यागी जैसे ही त्यागी थे, फिर भी उनके हृदय में अभिमान का अंकुर रह गया था। घोर वन में अकेले रहकर तप कर रहे थे, लेकिन अभिमान नहीं जाता था। शेर आते, चीते आते, लेकिन उनका ध्यान अटल बना रहता

तीर्थंकर के पास जाने में उन्हें रुकावट मालूम होती है। सोचते—'वहाँ जाऊँगा तो छोटे भाइयों को वन्दना करनी पड़ेगी।'

अभिमान मनुष्य का भयानक शत्रु है। मनुष्य बहुत कुछ त्याग सकता है पर अभिमान त्यागना बड़ा ही कठिन है।

बाहुबली की दो बहिनें थी—ब्राह्मी और सुन्दरी। उन्होंने भी दीक्षा ली थी। भगवान् ऋषभदेव के संकेत पर दोनों सोचने लगीं—भाई का तप कितना कठोर है। लेकिन अभिमान के कारण उनकी तपस्या सफल नहीं हो रही है। किसी उपाय से इनका अभिमान हटाना चाहिए। यह सोचकर वे उनके पास आईं। उन्होंने कहा—

'वीरा मेरे ? गज से नीचे उतरो, गेज चढे केवल न होय।'

भाई के कान में यह शब्द पड़ते हैं और उन्हें लगता है। साध्वी बहिनें मुझे मान रूपी हाथी पर से उतरने के लिए कह रही हैं। वह उसी समय चेत गये। सोचनें लगे—भाई भले छोटे हों, पर दीक्षा में तो बड़े ही हैं।

तुरन्त बाहुबली मुनि तीर्थंकर भगवान् के पास जाते हैं और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है।

जैसे बाहुबली के कल्याण में अभिमान बाधक था, उसी प्रकार भरत के कल्याण में भोग विलास बाधक था। एक बार भरत अपनें काच महल में अपना रूप देख रहे थे। उनके मन में आया-अहा! मेरा रूप कितना गजब का है! मैं चक्रवर्त्ती राजा हूँ। कौन मेरे समान पुण्यशाली है!

उसी समय उनकी नजर अपनी उंगली पर पड़ी। उन्हें लगा—यह उंगली कैसी दिखाई देती है! न रूप न शोभा! वह सोचने लगे उंगली से अंगूठी की शोभा है या अंगूठी से उंगली की? इस तरह विचार करते-करते उनकी विचारधारा आत्मा तक जा पहुँची। उन्हें उसी समय केवलज्ञान हो गया!

एक को वन में केवलज्ञान हुआ, दूसरे को काच महल में। ये दोनों भाई धन्य हैं।

पाठ छठा

मेघकुमार

संयम में अस्थिर हुए देखे मेघकुमार।
दे शिक्षा प्रभु दृढ़ किया, धन्य धन्य अवतार ॥

दीक्षा लेने के बाद यह पहली ही रात थी। मेघकुमार राजा श्रेणिक के लाडले पुत्र थे। मगर दीक्षा लेने के बाद अमीर-गरीब का भेद नहीं रहता। भगवान् महावीर के अनेक शिष्यों में मेघकुमार तब अंतिम शिष्य थे। अतएव उनका स्थान सब से अंतिम था।

पिछली रात, जब वह मुनि नहीं बने थे, पलंग पर सोये थे। मुलायम बिस्तर और तकिया था। लेकिन मुनि बनने पर आज वह जमीन पर लेटे। तिस पर उनका बिस्तर दरवाजे में था। दरवाजे में साधुओं का आना जाना बना

रहा। इस कारण उन्हें रात भर नींद नहीं आई इससे मेघकुमार के मन में खराब विचार आने लगे।

मेघकुमार के विचार बढ़ते ही गये। उन्होंने सोचा संसार में मेरी कितनी इज्जत थी? सब लोग मेरा आदर करते थे? और यहाँ साधुओं के पैरों की धूल मेरे ऊपर पड़ रही है! भगवान् से आज्ञा लेकर सुबह होते ही मैं अपने घर लौट जाऊँगा।

सूरज निकलते ही मेघकुमार मुनि भगवान् के सामने जा पहुँचे। भगवान् के सामने मन की बात कहने की उनकी हिम्मत नहीं हुई। लेकिन भगवान् तो ज्ञानी थे। उन्होंने मेघकुमार के मन की बात पहले ही समझ ली थी। इसलिए भगवान् ने प्रश्न किया—क्यों, मन अस्थिर हो गया?

मेघकुमार ने रात की सब बात कह दी। भगवान् मेघकुमार के सरल हृदय को पहचानते थे। इसलिए उन्होंने कह दिया-जैसी इच्छा हो करो।

मेघकुमार का हृदय बहुत सरल था। सिर्फ खोटे विचारों के कारण ही उनमें चंचलता आ गई थी।

भगवान् ने कहा-मेघकुमार! तू वीर होकर इतने में ही थक गया? जरा अन्तर -पट को खोल। देख। एक खरगोश जैसे प्राणी की दया के खातिर, तूने अपने पूर्वभव में-हाथी के भव में कितना कष्ट सहन किया था? फिर यह तो संत हैं संतों की सेवा के लिए तो देवता भी तरसते हैं!

इतने उपदेश से मेघकुमार पिघल गये। उन्हें पूर्वभव का ज्ञान हो गया। भगवान् समझ गये कि मेघकुमार ने अपना पहले का भव जान लिया है:—

वन में दावानल सुलग रहा है। पशु-पक्षी चारों ओर से भाग-भाग कर आते हैं और किसी वचाव की जगह में इकट्ठे हो रहे हैं। मेघकुमार का जीव हाथी के रूप में वहाँ मौजूद है। खुजाने के लिए वह अपना पैर ऊँचा करता है। इतने में ही एक खरगोश पैर के स्थान पर बैठ गया। एक तो जगह थोडी और फिर पशु-पक्षियों की गसापसी। 'आफत के मौके पर वैर याद नहीं रहता है।' इस नियम के अनुसार सब जीवधारी प्रेम से दवे हुए बैठे हैं। ज्यों ही हाथी पैर नीचे करता है, तो खाली जगह पर कोमल खरगोश को बैठा जानकर उस कोमल जीव पर हाथी को दया उत्पन्न होती है। उसकी रक्षा के लिये हाथी पैर ज्यों का त्यों ऊंचा उठाये रखता है। वहुत देर के वाद दावानल शान्त होता है और सब प्राणी बिखर जाते हैं। मगर लगातार कई घन्टों तक तीन पैर पर खडे रहने वाले में कितनी दया होगी ? हाथी ने जब पैर नीचा करने का विचार किया तो पैर अकड़ जाने के कारण वह चक्कर खाकर गिर पड़ा और मर गया। हाथी का जीव, अगले भव में, श्रेणिक राजा के घर मेघकुमार के रूप में उत्पन्न होता है।

ऐसी अद्भुत क्षमा वाला मेघ, सडी-सी वात से आज डिग रहा है ? नहीं ऐसा नहीं हो सकता-नहीं डिग सकता। ऐसा विचार करके मेघ मुनि का मन मजबूत हो गया। संयम में स्थिर होकर उन्होंने अपने जीवन को सफल बनाया।

सेवा से मनुष्य अपना जीवन अमर बना लेता है। ऐसे अनेक उदाहरण हम देख सकते हैं।-सेवा करके श्री कृष्ण वासुदेव ने तीर्थंकर गोत्र बांधा था।

धन्य है सेवाभावी मेघकुमार !
धन्य है दयावान् मेघकुमार !
धन्य है जगत् को तारने वाले प्रभु महावीर !

पाठ सातवाँ

हरिकेशी मुनि

चाण्डाल-कुल में जन्म लेकर, जो महामुनि हो गए,
उनकी चरण-रज शीषधर, द्विज परम पावन हो गए।

हरिकेशी मुनि का जन्म चाण्डाल के कुल में हुआ था। वह जैन धर्म को स्वीकार कर साधु बने थे। एक बार भिक्षा के लिय भ्रमण करते करते वह यज्ञ के एक वाड़े में जा पहुँचे। वहाँ एक उपाध्याय यज्ञ की क्रिया करा रहा था। भद्रा नामक उसकी स्त्री भी वहाँ मौजूद थी। भद्रा कौशल देश के राजा की लड़की थी।

उपाध्याय के सामने बठे विद्यार्थी मंत्र पढ़ रहे थे। आहुतियाँ दी जा रही थीं। भगवान् महावीर के उपदेश का असर उन पर अभी तक नहीं पड़ा था। इसी कारण वे लोग निर्दोष प्राणियों को आग में होमते थे और उसे यज्ञ कहते थे। वहाँ बहुत-सा अन्न भी बिगाड़ा जाता था।

हरिकेशी मुनि भिक्षा के लिए वहीं जा पहुँचे। उन्हें देखकर किसी घमंडी ब्राह्मण के लड़के ने कहा-अरे ! यह दैत्य सरीखा कौन है ?—यह कह कर वह मुनि को मारने दौड़ा ! वह चिल्लाने लगा-तू यहाँ कैसे आ गया ! जानता नहीं, यहाँ यज्ञ हो रहा है !

हरिकेशी मुनि शान्ति के साथ खड़े रहे। उन्हें अपने अपमान की परवा नहीं थी। फिर उन्होंने कहा-मैं साधु हूँ और भिक्षा के लिए आया हूँ।

यह सुनते ही लड़का बोला-चल, हट जा यहाँ से ! यहाँ का अन्न तेरे लिए नहीं, ब्राह्मणों के लिए है।

मुनि ने वहाँ खड़ा रहना उचित नहीं समझा। मगर मुनि के साथ एक यक्ष रहता था। वह छिपे रूप से मुनि के शरीर द्वारा कहने लगा—

यक्ष ने कहा-देखो मैं भी ब्राह्मण हूँ, क्योंकि जो ब्रह्मचर्य व्रत पालता है, वही ब्राह्मण कहलाता है। मुझे अन्न दो।

यह सुनकर नामधारी ब्राह्मणों को गुस्सा आया। जो सच्चा ब्राह्मण होता है वह कभी क्रोध नहीं करता। मगर वह तो सिर्फ ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न ही हुए थे। सच्चे ब्राह्मण-धर्म को पालने वाले ब्राह्मण नहीं थे।

गुरु का क्रोध बढ़ने पर शिष्यों को सरलता से मार्ग मिल गया। सब के सब शिष्य मुनि को मारने दौड़े। किसी ने बांस उठाया, किसी ने चाबुक लिया। जिसे जो हाथ लगा वही लेकर सब मुनि को मारने दौड़े।

मुनि ने सोचा—पहले ही लौट गये होते तो ठीक था; मगर अब जाना भूल होगी। क्रोध उत्पन्न न हो, इसलिए मुनि नेत्र मूंद कर स्थिर होकर खड़े हो गये। ब्राह्मण-शिष्य मुनि को बुरी तरह कष्ट पहुँचाने लगे।

अचानक भद्रा का ध्यान मुनि की तरफ गया। उसे मालूम हुआ-'अहा यह ब्रह्मचारी साधु हैं, जिन्होंने ब्रह्मचर्य का तेज दिखाया था।' उसने सब को रोकने की कोशिश की। लेकिन नादान छोकरे कब मानने वाले थे।

मुनि ज्यों के त्यों मूर्ति के समान खड़े रहे। उनके तप के प्रभाव ने यक्ष को प्रभावित किया। यक्ष ने भंयकर रूप धारण किया। यक्ष हमेशा ही मुनि की रक्षा के लिए प्रयत्न किया करता था। वह मुनि के इस कष्ट को सहन नहीं कर सका। उसने किसी का मस्तक टेढ़ा कर दिया; किसी की आँखें निकल पड़ीं, कोई लोहू-लुहान हो गया, किसी की जीभ बाहर निकल पड़ी। यक्ष ने ऐसी भयानक हालत पैदा कर दी, यह देखकर ब्राह्मण उपाध्याय घबराया और मुनिराज के पैरों पर गिरकर माफी मांगने लगा। उसने कहा-'क्षमा कीजिए, तपस्वीराज! हमारे जैसे अज्ञान को क्षमा कीजिए।'

मुनिराज ने नेत्र खोले तो यह करुण दृश्य दिखाई दिया। दूसरा कोई होता तो यह दशा देखकर खुश होता। मगर दयावान् मुनि को बहुत दुःख हुआ; क्योंकि वे अहिंसा का पालन करते थे। उन्होंने समझ लिया कि यह यक्ष की ही करतूत है! यक्ष उसे मुनि की सेवा समझता था, पर मुनि को ऐसी सेवा की जरूरत नहीं थी।

मुनि ने कहा—भाई, यह खराब काम मैंने नहीं किया है। मैं ऐसा करने की बात सोच भी नहीं सकता। सच्चा तपस्वी कभी ऐसा काम नहीं कर सकता। मैं क्रोध करूँ तो मेरा साधुजीवन कलंकित हो जाय।

मुनिराज का दुःख देखकर यक्ष को भी पछतावा हुआ। उसने सबको दुरुस्त करने में सहायता पहुँचाई।

आखिर सब लोग हरिकेशी मुनि के पैरों में गिरे। सब ने अपने जीवन का सुधार किया।

पाठ आठवाँ

गुरु गौतम

चले वीर को परखने, मगर गये परखाय।
गौतम, प्रभु के शिष्य बन, मुक्त हुए मुनिराय॥

एक पण्डित थे। उनका नाम इन्द्रभूति था। उनका गोत्र गौतम था। इस कारण 'गौतम' के रूप में ही वह प्रसिद्ध हुए! उनके दो भाई और थे। एक का नाम अग्निभूति, दूसरे का नाम वायुभूति। इनकी माता का नाम पृथ्वी था। पिता का नाम वसुभूति था। मगध देश में, गोबर नामक गांव में वे रहते थे।

इन्द्रभूति और उनके दोनों भाई हिलमिल कर रहते थे। तीनों भाई अपने माँ-बाप के समान होशियार थे। तीनों अपने अलग-अलग गुरुकुल चलाते थे।

गुरुकुल अर्थात् गुरु और विद्यार्थियों का निवासस्थान पुराने समय में विद्यार्थी, गुरु के पास रह कर विद्या पढ़ते थे। किसी भी जाति का लड़का गुरु के पास जाकर और वहीं रह कर विद्या सीखता था।

इन्द्रभूति के गुरुकुल की बहुत कीर्ति थी। इसलिए अच्छे-अच्छे आदमी उनके पास आते थे और कभी-कभी इन्द्रभूति भी यज्ञ करने के लिए बाहर जाया करते थे। एक वार उन्हें अपापापुरी के यज्ञ के लिए निमंत्रण मिला। तीनों भाई वहाँ पहुँचे। सोमिल नामक ब्राह्मण वहाँ बड़ा यज्ञ करवा रहा था। इन्द्रभूति गौतम सब में कुशल थे। और भी पंडीत आये थे। खूब सजाया- सिङ्गारा हुआ मण्डप बनाया गया था। यज्ञ की क्रिया आरंभ हुई।

उन्हीं दिनों वहाँ पास के एक बगीचे में भगवान् महावीर पधारे हुए थे। गांव-गांव के लोग तथा स्वर्ग के देवता भी भगवान् महावीर के दर्शन करने के निमित्त आते थे। उन्हें देखकर इन्द्रभूति ने सोचा-अहा! मेरे यज्ञ में शामिल होने के लिए कितने लोग आ रहे हैं! मगर जब लोग सीधे बगीचे की तरफ चले गये तो उन्हें निराशा हुई। बुरा भी लगा। तलाश करने पर मालूम हुआ कि पास वाले बगीचे में ठहरे हुए साधु के दर्शन करने के लिए लोग जा रहे हैं। तब इन्द्रभूति सोचने लगे-कैसा है वह साधु! कोई ठग तो नहीं है? चलो, देख आऊँ। उसकी होशियारी की परीक्षा कर देखूं जिसके कारण इतने आदमी उसके दर्शन करने जाते हैं।

इन्द्रभूति में पंडिताई का अभिमान उछलने लगा। दोनों भाइयों को यज्ञ का काम सौंपकर वे अपने शिष्यों के साथ भगवान् महावीर के पास पहुँचे।

देखा, वहाँ मनुष्यों की भीड़ लगी है। चारों ओर शान्ति छाई है। सामने भ० महावीर उपदेश दे रहे हैं और लोग बड़ी शांति के साथ सुन रहे हैं। ज़रा भी शोर-गुल नहीं। धीरे-धीरे सब के ऊपर उनके उपदेश का प्रभाव पड़ रहा है। गौतम यह दृश्य देखकर ठंडे पड़ गये। उनका हृदय पिघल गया उन्हें ऐसा लगा कि यह तो कोई महान् पुरुष है। इस महापुरुष की शान्ति, इसका प्रभाव और इसकी क्षमा अनोखी है। गौतम का अभिमान गल गया।

गौतम परीक्षा करने के बदले उनके शिष्य बनने को तैयार हो गये। उन्होंने भगवान् के पास जाकर अपनी शंकाएँ दूर की। जो बात शास्त्र से समझ में नहीं आती थी, वह भगवान् ने समझाई। उन्होंने भगवान् को प्रणाम किया और कहा—

'प्रभो ! मैं मूर्ख आपकी परीक्षा लेने आया था; पर यहाँ आकर मेरी ही परीक्षा हो गई। नाथ ! आज से आप मेरे गुरु और मैं आपका शिष्य।'

दूसरे पण्डितों को यह खबर मिली तो वे भी दौड़े आये। उन्होंने भी अपने मन की शंकाएँ भगवान् के सामने पेश की। भगवान महावीर के ज्ञान के लिए सभी के दिल में आदर भाव उत्पन्न हुआ। इस प्रकार ग्यारह पंडितों ने और बहुतेरे उनके चेलों ने भगवान् के पास दीक्षा ली। उनमें से गौतम, भगवान् के मुख्य शिष्य बने।

चवालीस सौ चेले किये, एक ही दिन में महाव्रत दिये ।
गौतम सरीखे हुए वजीर, मन वांछित पूरण महावीर ॥

साधु बनने के बाद गौतम स्वामी खूब तप करने लगे। तप और विद्या से वे सुशोभित हुए। तपस्या के प्रभाव से उनकी शक्तियाँ बढ़ने लगीं। उनका उपदेश सुनने वालों पर जादू सा कर देता था। गौतम स्वामी को अभी केवल ज्ञान नहीं हुआ था। गौतम स्वामी को भगवान् पर बहुत प्रेम था और उस प्रेम में कुछ मोह का अंश मिला हुआ था। गौतम के उपदेश से उनके शिष्यों को तो केवलज्ञान हो गया, पर खुद उन्हें नहीं हो पाया।

एक बार गौतम ने भगवान् से पूछा-प्रभो ! मेरे शिष्यों को केवलज्ञान हो गया, पर मुझे क्यों नहीं होता ?

भगवान् ने उत्तर दिया—तुममें तप करने की शक्ति है, तुम बुद्धिशाली हो, लेकिन तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति जो मोह है, वह केवलज्ञान को रोक रहा है। इस प्रकार के मोह से भी आत्मा की हानि होती है। अतः तुम मेरे ऊपर मोह मत रक्खो।

गौतम ने यह उपदेश सुना, पर भगवान् के प्रति उनका जो मोह था, उसे वे त्याग न सके।

इतने में भगवान के निर्वाण का समय आ गया। भगवान् ने सोचा—अगर गौतम यहाँ रहेगा तो ठीक नहीं होगा। यह सोचकर उन्होंने गौतम को उपदेश देने के लिए बाहर भेज दिया। गौतम आज्ञाकारी शिष्य थे। वे उधर गये और इधर भगवान् महावीर का निर्वाण हो गया।

गौतम जब वापिस लौटे और भगवान् के निर्वाण का वृत्तान्त सुना तो उन्हें गहरा धक्का लगा। वे सोचने लगे—'भगवान् ने मुझसे यह बात छुपाई!' फिर तुरंत उन्हें खयाल आया—'भगवान् ने मेरा मोह छुड़ाने के लिए यह उपाय किया होगा!' इस प्रकार सोचते सोचते उनका मोह नष्ट हो गया और केवलज्ञान प्रगट हुआ।

गौतम स्वामी चौदह हजार शिष्यों में प्रधान हुए। उन्होंने देश-देश में भ्रमण करके भगवान् महावीर का उपदेश फैलाया भगवान् के उपदेश को उन्होंने शब्द रूप में संगृहीत किया, जो जिन आगम-शास्त्र कहलाते हैं। उन्होंने सारे संसार का महान् उपकार किया। अंत में राजगृह नगर में उनको भी निर्वाण प्राप्त हुआ।

संसार से तरने वाले, महावीर प्रभु के उपदेशों को अमर बनाने वाले गौतम गुरु को हमारा सदैव वन्दन हो

पाठ नौवाँ

ऋषभदेव

जग को जीवन की कला, सिखलाई निज हाथ।
धर्म-कला सिखला बने, श्री ऋषभ जगन्नाथ॥

ऋषभदेव की कथा तुमने सुनी है? उनकी माता का नाम मरुदेवी और पिता का नाम नाभि था। ऋषभदेव का दूसरा नाम आदिनाथ है।

पहले के समय में इच्छानुसार मीठे-मीठे फल देने वाले वृक्ष खूब थे। उन्हें कल्पवृक्ष कहते थे। बाद में उनकी कमी हो गई। इसलिए ऋषभदेव ने लोगों को अनाज बोना सिखलाया। लोगों की मिहनत कम करने के लिये और दूध घी प्राप्त करने के लिए गोपालन की शिक्षा दी।

उस समय के लोग एकदम भोले और निर्दोष थे। अनाज बोना तो वे सीख गये पर उसे तैयार करना उन्हें आता नहीं था। ऋषभदेव ने कहा-'इस बैल से काम लो।' तब खलिहान बने। बैलों से अनाज कुचलवाया जाने लगा। मगर बलों के मुँह उघाड़े थे। इसलिए कुचलते-कुचलते बैल ही बहुत सा अनाज खा जाते थे। इस दिक्कत को दूर करने के लिए लोग ऋषभदेव के पास गये। ऋषभदेव ने बैलों को छींका लगाने की तरकीब बतला दी।

लोग एकदम भोले थे। उन्होंने छींका लगाकर बलों के मुँह बांधे तो कइयों ने खोलने का नाम ही नहीं लिया। घास-पानी बैलों के सामने रख तो दिया, मगर बेचारे बैल खाएँ तो कैसे खाएँ! लोग फिर ऋषभदेव के पास भागे-भागे गये। उनसे कहा महाराज! बैल न कुछ खाते हैं, न पीते हैं!' तब ऋषभदेव ने उन्हें बतलाया बैलों का मुँह खोल देना। तब वे खाने-पीने लगेंगे। इस तरह ऋषभदेव ने लोगों को छोटी-मोटी सब बातें सिखलाई।

ऋषभदेव ने बासन-बर्तन बनाने की कला सिखलाई। जिन्होंने यह काम करना शुरु किया, वे प्रजापति ‡ कहलाए।

---

‡ आज कुम्भार या कुम्हार कहते हैं।

एक वार जंगल में जोर का तूफान आया। वांस आपस में टकराये और ऐसे जोरों से टकराये कि उनकी टक्कर से आग लग गई। लोग यह देखकर घवराये कि वाप रे वाप! यह क्या मुसीवत है! लोग उस आग को पकड़ने दौड़े। किसी का हाथ जल गया, किसी के पैर जल गये किसी के वाल साफ हो गए। अपनी यह विचित्र दशा देखकर और पीड़ा से कराहते हुए लोग फिर ऋषभदेव के पास पहुँचे। तव भगवान् ऋषभदेव ने उन्हें भोजन पकाने की कला सिखलाई।

पहले के मनुष्य युगलिक थे। उन्हें कल्प वृक्ष से वस्त्र उपलब्ध हुआ करते थे। उन्हें अव कपड़ा वनाना और पहिनना सिखलाया गया।

इसके वाद लोगों को व्यापार करने की विद्या सिखलाई. अपनी चीज दूसरों को देना और उसके वदले दूसरों की चीज आप लेना व्यापार कहलाता है। व्यापार करने के लिए अभ्यास की जरूरत रहती है। इसलिए ऋषभदेव ने सोचा-- लोगों को अक्षरज्ञान आना चाहिए। और कभी किसी प्रकार का विवाद खड़ा हो जाय तो उसे मिटाने के लिए पंच मुकर्रर करना चाहिए। पंच का फैसला सव मानेंगे। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव ने समाज के लिए अनेक नियम वनाये।

लोग सव साथ में रहते थे। 'यह मेरा' यह तेरा' इस तरह का झगड़ा होता था। इसलिए जमीन के टुकड़े कर दिये गये। उनके ऊपर रखवाले रख दिये गये और वही रखवाले क्षत्रिय कहलाए।

इस तरह ऋषभदेवने लोगों के जीवन को नये सांचे में ढाल दिया। लोग सुखी हो गए और आराम से रहने लगे।

कुदरती चीजों का उन्होंने उपयोग करना सिखलाया और भाइयों-भाइयों में प्रेम उत्पन्न कराया। लोगों को नयी-नयी बातें सिखलाईं।

ऋषभदेव ने बहुत प्रयत्न करके लोगों का जीवन सुधारा। आज हम लोग छोटी उम्र में ही बहुत-सी खोजों को सहज रूप से जानते हैं। इसलिए हमें ऐसी बातों में कुछ नवीनता नहीं मालूम होती। मगर आज मामूली मालूम होने वाली बातें भी उस जमाने में बहुत महत्त्व रखती थीं।

ऋषभदेव की दो स्त्रियाँ थीं। एक का नाम सुनन्दा और दूसरी का नाम सुमंगला था। सुनन्दा के दो संतान थीं—एक भरत और दूसरी ब्राह्मी। सुमंगला के भी बाहुबली और सुन्दरी नामक दो संतान थीं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से पुत्र हुए थे।

अब ऋषभदेव लोगों को धर्म सिखलाने लगे। धर्म सिखलाने के लिए स्वयं त्यागी बने। अनेक प्रकार के तप करने लगे और सर्दी-गर्मी सहने लगे। बहुत बार उपवास करते। उपवास का पारणा करने भिक्षा के लिये कहीं जाते तो भोले होने के कारण कोई उन्हें हाथी घोड़ा देने लगता, कोई सोना चांदी देने को तैयार होता और कोई हीरा मोती लेने की प्रार्थना करता। मगर साधुओं को इन वस्तुओं से क्या सरोकार! भगवान् कुछ न लेते तो लोग सोचते–इतना बहुत देने पर भी लेते क्यों नहीं हैं? जगह-जगह यही हाल था। भगवान् बहुत दिनों तक भूखे रहे। आखिर एक बार भगवान् राजा श्रेयांसकुमार के घर पहुँचे। श्रेयांसकुमार भगवान् के पोते लगते थे।

वह समझ गये। उन्होंने गन्ने के रस का दान दिया। भगवान् कोई पात्र नहीं रखते थे। हाथ ही उनका पात्र था। हाथों में रस लेकर उन्होंने पी लिया और इस तरह उनका पहला पारणा हुवा। आज भी वर्षी तप का पारणा गन्ने के रस से किया जाता है।

इस प्रकार तप करते-करते भगवान् ऋषभदेव को केवलज्ञान हुआ! वे जगत् की सब चीजों को जानने लगे। इसलिए वे सर्वज्ञ कहलाए।

केवलज्ञान होने के बाद उन्होंने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं का संघ कायम किया। वे प्रथम तीर्थंकर हुए।

जो भगवान् लोगों को कर्म में से धर्म में ले गये, उन महान् तपस्वी प्रभु ऋषभदेव का उपकार कौन भूल सकता है? आज भी संसार में उनके कार्यों की प्रशंसा की जाती है।

बोलो—ऋषभ जय जय, पारस जय जय।
महावीर जय गुरु, गौतम जय जय॥
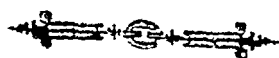
पाठ दसवाँ

सेवाभावी नन्दीषेण

सेवा-धर्म गहन वड़ा, अनुभव का यह वेग,
सेवन से सिद्धि मिले, देखो नन्दिषेण।

एक लड़का एकान्त में खड़ा है। वह समझता है कि 'मुझे कोई देख नहीं रहा है'। यह समझ कर वह अपने गले में फाँसी लगाने को तैयार हुवा। उसी समय एक संत मुनि—राज वहाँ आ पहुँचे और वोले-अरे भाई! तू यह क्या करता है?

लड़का बोला—मरने का उपाय कर रहा हूँ।

मुनिराज—क्यों? ऐसा कौन-सा संकट आ पड़ा है? जिससे यह घोर कर्म करने को तैयार हुआ है?

लड़का—मैं वहुत दुःखी हूँ। वचपन में ही मुझे अकेला छोडकर माँ बाप चल वसे। मेरे मामा मुझे अपने घर ले गये। मगर मामी मुझसे द्वेष करने लगी। फिर मैं ठहरा कुरूप! कौन मुझे चाहे? सभी मेरा तिरस्कार करने लगे। अब मर जाना ही मेरे लिए अच्छा है।

मुनिराज ने लड़के को समझाया—यह सब तेरे पूर्व भव के पाप का फल है। अपने किये कर्मों का फल तुझे भोगना ही पड़ेगा। आत्महत्या करने से तू वच नहीं सकता। अगर तू आत्महत्या कर लेगा तो आगे इससे भी भयंकर दुःख तुझे

सहन करना पडेगा। हाँ, किये कर्मों का फल शान्ति के साथ भोगना, तो तेरा भला होगा।

मुनि के शब्द सुनकर लड़का पिघल गया। वह मुनि के चरणों में गिर गया और बोला-- 'मुझे कोई मार्ग बतलाइए।'

लड़का अब साधु बन गया। अब सेवा करना ही उसका प्रधान धर्म था। वह अपंग और वृद्धों की सच्चे दिल से सेवा करता था। सब प्राणियों पर प्रेम रखता था। क्या छोटा, क्या बड़ा, सभी प्राणी उसके प्रेम से भींग जाते थे। सब इसके पास आते और मीठे बोल सुनकर प्रसन्न हो जाते।

नंदिषेण की कीर्ति इतनी फैली कि इन्द्र भी तारीफ करने लगा। देवों ने सोचा--ऐसा सेवाधर्मी नंदिषेण कौन है ? चलो, उसकी परीक्षा करने चलें।

दोनों देव परीक्षा करने चले। एक बना वृद्धा रोगी साधु और दूसरा बना साधारण साधु।

एक दिन नंदिषेण दो उपवास के बाद पारणा कर रहे थे उसी समय साधारण साधु वहाँ आ पहुँचा। उसने कहा-बड़ा सेवाभावी साधु बना है ! इसी को लोग सेवाभावी कहते हैं। बैठा बैठा माल उडा रहा है ! अरे नंदिषेण ! इसी गाँव के बाहर एक अपंग और बूढ़ा साधु बैठा है। उसने कितने ही दिनों से कुछ भी नहीं खाया-पिया है। तू सेवाभावी गिना जाता है जा उसकी कुछ मदद कर।

यह सुनकर नंदिषेण ने एक भी कौर मुंह में नहीं डाला। भोजन का पात्र एक किनारे रख दिया और खडे हो गये।

आठ-दस घरों में फिर कर अचित्त पानी लिया और गाँव-बाहर पहुँचे। साधु को देख कर नमस्कार किया। पानी उसके सामने रख दिया। बूढ़ा साधु यह देखकर उबल पड़ा। कहने लगा-हाय, मैं कब से दुःखी ही रहा हूँ। कब का संदेश भेजा है और तू अब आया है!

नंदिषेण ने कहा—क्षमा कीजिए महाराज! शुद्ध पानी लाने के लिए घूमना पड़ा। इसी से देरी हो गई। चलो आपको गाँव में ले चलूं।

बीमार बना हुआ साधु फिर बनावटी क्रोध से बोला-मूर्ख कहीं के! मैं फिर तो सकता नहीं और तू चलने की बात करता है! शर्म नहीं आती?

नंदिषेणि ने कहा— 'प्रभो! मैं आपको अपने कंधे पर बिठलाकर ले चलूंगा।' इतना कहकर उन्होंने सहारा देकर उठाया और अपने कंधे पर बिठा लिया।

वह बनावटी मुनि भारी-भारी होने लगा। दो-दो उपवास करने के कारण नंदिषेण का शरीर अशक्त हो गया था। मगर इस मुनि को तो परीक्षा करनी थी।

साथ वाले दूसरे मुनि ने कहा—अरे! जवान-पट्ठा होकर काँपता है?

कंधे पर बैठे मुनि ने कहा—भले आदमी! मेरे बीमार शरीर को तो तू ने बिगाड़ दिया! सेवा क्या इसी तरह की जाती है? थोड़ा खयाल तो रख।

नंदिषेण सब कटुक शब्दों को सहन करते गये। उन्हें लेश भी क्रोध नहीं आया। उन्होंने शांति से कहा—अच्छा महाराज़! अब अच्छी तरह चलता हूँ।

अब भी कसर रह गई थी। ऊपर बैठे मुनि को शौच की हाजत हुई। नंदिषेण उसे नीचे उतारें-उतारें तब तक तो उसने टट्टी कर दी। नंदिषेण के कपडे लथपथ हो गये। उनका शरीर भी मल-मूत्र से भर गया। चारों ओर बदबू फैल गई। लेकिन नंदिषेण मुनि एक ही बात सोच रहे थे-अहा! इन वृद्ध मुनि को कितना कष्ट हो रहा होगा! जल्दी उपाश्रय में ले जाकर इनकी ऐसी सार-सँभाल करूँ कि जल्दी अच्छे हो जाएँ। धन्य सेवा प्रेमी नंदिषेण!

इतने में स्थानक आ गया। मुनि को धीरे से नीचे उतारा। मल-मूत्र साफ करने लगे। लेकिन ज्यों ही उन्होंने पीछे फिर कर देखा तो न वहाँ साधु और न वहाँ मल-मूत्र! सभी कुछ गायब हो गया।

नंदिषेण मुनि को दो दिव्य ज्योतियाँ दिखाई दीं। दिव्य वाणी भी उन्हें सुनाई दी-'धन्य हो! मुनिवर! आपकी सेवा अद्भुत है! आप सचमुच वैसे ही हैं जैसा हमने सुना था। हम आपकी परीक्षा लेने आये थे और हमें संतोष हुआ है। कुछ माँग लीजिए।'

नंदिषेण मुनि ने कहा—वीतरागधर्म से बढकर और क्या है, जो माँगू? मुझे और कुछ नहीं माँगना है मैंने अपने धर्म का पालन किया है, किसी पर उपकार नहीं किया है।

दोनों देव खुशी-खुशी चले गये।

कहाँ आत्महत्या करने को तैयार हुआ लड़का और कहाँ सेवा नंदिषेण ! धर्म के प्रताप से कितना बड़ा परिवर्तन हो गया !

पाठ ग्यारहवाँ

कपिल केवली

दो मासा भर स्वर्ण की, राज्य मिले नहीं जाय ।
सो तृष्णा संतोष से, मुनिवर कपिल बुझाय ॥

कपिल एक गरीब ब्राह्मण का लड़का था माँ और बाप बचपन में ही उसे अकेला छोड़कर चल बसे थे अब उसे कहने वाला कौन था ? वह इधर-उधर भटकता रहता। इस लिये उसकी सौतेली माता ने सोचा-'इसे कहीं बाहर भेज दूं तो ठीक रहेगा। शायद कुछ पढ़-लिख भी जाय।' माता ने उसे श्रावस्ती नगरी में पढ़ने के लिये भेज दिया। कपिल का मन पढ़ने में लगने लगा। होशियार होने के कारण उसे बहुत-से इनाम मिलने लगे। अब वह जवान हो गया।

कपिल विद्यार्थियों का मुखिया बन गया। होशियार होने के कारण लोग उसे बहुत-चीजें भेंट देते, पर वह सँभाल कर न रखता। वह दिनों दिन लापरवाह होता गया। यहाँ तक कि धीरे-धीरे वह मर्यादा का भी उल्लंघन करने लगा।

उस गाँव में एक राजा था। वह विद्या का शौकीन था उसने घोषणा की कि जो कोई सुन्दर श्लोक बनाएगा, उसकी कद्र की जायगी। कपिल सुन्दर श्लोक बनाकर राजा के पास गया।

श्लोक पढकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। अहा! कितनी सुन्दर रचना! उसने कहा—पंडितजी! आपका श्लोक मुझे बहुत पसंद आया।

राजा ने कहा—सामान्यरूप से मैं हरेक को दो मासे भर सोना देता हूँ। मगर आपको जो चाहिए सो दूँगा। कहिए, क्या दूँ?

कपिल बोला—जो माँगूगा सो दोगे?

राजा—मेरे पास जो होगा, अवश्य दूँगा।

कपिल सोच-विचार में पड़ गया-क्या माँगूँ? एक मोहर माँग लूं? लेकिन एक मोहर कितने दिन चलेगी? हजार या लाख मोहरें क्यों न माँग लूं? इस प्रकार लोभ बढता ही गया और वह विचार में डूबा रहा।

अन्त में कपिल ने विचार किया-- तो सारा राज्य ही क्यों न माँगू? जिससे मैं और मेरी पत्नी-दोनों जिंदगी भर मौज से रहेंगे।' इस तरह उसके हृदय में विचार पर विचार आने लगे।

सोने-चाँदी के पर्वत हों ऊँचे खडे यथा कैलाश।
किंतु असीम व्योम की जैसी मिटे न हा! लोभी की आश॥

विचार करते-करते कपिल की आँख खुल गई, उसने राजा से कहा—मुझे कुछ नहीं चाहिए।

राजा—कुछ तो माँगना ही चाहिए।

कपिल ने एक के बाद एक मन में आये विचार राजा को कह सुनाये। फिर कहा—जगत् की सब इच्छाएँ मेरे विचार ही विचार में पूरी हो गई हैं। अब माँगने योग्य कुछ शेष नहीं रहा। आप ही कहिए, माँगूं तो क्या माँगूं? खोटी इच्छा के कारण मुझे यह राज्य भी छोटा पड़ रहा था; मगर अब संसार की एक भी वस्तु मुझे नहीं रुचती। जब तक भावना मलिन रहती है, तब तक जीवन का कल्याण नहीं होता।

इस तरह विचार करते-करते कपिल के पाप नष्ट होने लगे और उन्हें केवलज्ञान हो गया।

भटकते छोकरे से एक होशियार विद्वान बना
और अन्त में आत्मा का कल्याण-साधन किया।

पाठ बारहवाँ

इलायचीकुमार

नटनी काजे नट बना श्रीधनदत्त कुमार।
बना पतंग सुरूप का अहा! इलायचीकुमार॥

नटिनी के सौन्दर्य पर, हुआ मुग्ध अति भूप ।
पर मुनिवर को देखकर, हुआ विराग अनूप ॥
वह समझा समझी नटी, अरु समझा भूपाल ।
तपस्या त्याग विराग से तोड़ा जग-जंजाल ॥

इलावर्धक नामक नगर में धनदत्त नामक एक धनी सेठ रहता था । उसके पुत्र का नाम इलायचीकुमार था ।

नगर में नटों की टोली आई है । खेल देखने के लिए झुंड के झुंड लोग जमा हैं । एक नट रस्सी पर खड़ा है । दूसरा ढोल बजा रहा है और एक युवती बांस लेकर खड़ी है ।

इलायचीकुमार भी वहां गया था नट की वह लड़की बहुत ही सुन्दर, लावण्यमयी और चतुर थी । इलायचीकुमार की नजर उसी पर थी । और लोग खेल देखने में मगन हो रहे थे, मगर इलायचीकुमार का मन कहीं नहीं लग रहा था ।

खेल पूरा हो गया । सब लोग अपने-अपने घर लौटे । इलायचीकुमार भी घर आया ।

घर आकर इलायचीकुमार ने न खाया, न पिया । उस के पिता ने पूछा--बेटा ! तू उदास क्यों है ?

इलायचीकुमार-मुझे उस नट कन्या के साथ विवाह करना है ।

धनदत्त सेठ ने कहा--कहां तू और कहां वह ! अपनी जाति और उसकी जाति में कितना अन्तर है ! यह कह कर धनदत्त सेठ ने बात उड़ा दी ।

मगर इलायचीकुमार उस लड़की के रूप पर मुग्ध हो गया था । उसने नटों के मुखिया को बुलवाया और कहा--

तुम जो माँगों सो देने को तैयार हूँ, मगर अपनी कन्या का मेरे साथ विवाह कर दो। किसी भी उपाय से मैं उसके साथ विवाह करूँगा।

नटों के मुखिया ने कहा-यह कैसे हो सकता है ? मुझे अपनी कन्या का विवाह किसी नट के साथ ही करना होगा, नहीं तो जाति के लोग विरोध करेंगे। मुझे पैसे का क्या करना है ? जाति बिरादरी के नियम में मेरा कुछ नहीं चल सकता

इलायचीकुमार – क्या मेरी जाति अच्छी नहीं है ? क्या वैश्य की जाति से भी तुम्हारी जाति ऊँची है?

मुखिया – ऊँच नीच का सवाल नहीं है। हमे अपनी जाति के प्रश्न पर अधिक ध्यान देना पड़ता है। हमारी कन्या दूसरी जाति में जाय; यह बात हमें पसंद नहीं है समझे सेठजी !

अन्त में इलायचीकुमार ने नटकला सीखने और उस कन्या के साथ शादी करने का निश्चय किया। वह घर छोड़कर चल दिया।

इलायचीकुमार भी अब चतुर नट हो गया। गाँव – गाँव फिर कर वह अपने पिता के नगर आया। माथे पर टोकरा लेकर ढोल बजाना- घिरग, घिरग, घनननन ! घनननन ! घन् ! ढोलक भी वह बहुत बढ़िया बजाना। मतलब यह कि इला— यचीकुमार इस कला में प्रवीण हो गया।

वह वेणुतट के राजा को अपनी कला दिखाकर पहला इनाम लेना चाहता है। नट मंडली गांव में आई हैं। टोले के टोले आदमी इकट्ठे हुए हैं। रानियां भी महल के छज्जों में बैठ कर तमाशा देख रही हैं।

इलायचीकुमार बांस पर चढ़कर खेल करने लगा। मगर राजा का मन मानता नहीं था। खेल पूरा हुआ। इलायचीकुमार 'खमा अन्नदाता! कहकर राजा के पास इनाम मांगने पहुँचा। राजा ने कहा - खेल की तरफ मेरा ध्यान नहीं था। दूसरा खेल करो।

इलायचीकुमार फिर ऊपर चढा। इस तरह चार वार खेल करने पर भी राजा खुश नहीं हुआ। यह देख रानियों को भी वहम हुआ और दूसरे लोग भी विचार में पड़ गए कि राजा क्यों ऐसा कर रहा है? राजा का चित्त नटिनी पर था। वह सोचता था - नट वांस पर से गिरेगा और मैं नटिनी के साथ विवाह कर लूंगा।

आह! रूप पर मुग्ध होकर मनुष्य क्या — क्या नहीं कर डालता!

इलायचीकुमार का उत्साह भंग हो चुका था। फिर खेल करने की उसकी इच्छा नहीं थी। मगर नट कन्या ने कहा - कुमार! एक वार और चढ जाओ और राजा को प्रसन्न करो। अन्यथा सारी मेहनत वृथा जायेगी।

वह पाँचवी वार वाँस पर चढा। इस वार उसका मन दूसरी जगह था। वह बेमन खेल कर रहा था। उसका मन एक मुनि की तरफ था।

उन मुनि को एक वहुत सुन्दर स्त्री आहार दे रही थी। पारणा होने के कारण मुनि सादा भोजन ले रहे थे। मुनि की दृष्टि स्त्री तरफ न होकर पात्र की तरफ ही जमी हुई थी।

इलायचीकुमार सोचने लगा – कहाँ यह मुनि और कहाँ मैं ! सुन्दर स्त्री सामने खडी है, फिर भी मुनिराज अचल हैं। माता – पिता की आज्ञा न होने पर भी मैं इस नटिनी के पीछे पागल बन गया हूँ ! और अपने शरीर को परेशान करके गांव - गांव भटक रहा हूँ।

यों विचार करते - करते उसे आत्मज्ञान हो गया। नटिनी भी चतुर और संस्कारवाली थी। अपने कामों के प्रति तिरस्कार आने पर वैराग्य हुआ।

राजा भी सोचने लगा - राजा होकर मैं यह क्या कर रहा हूँ ? और यह मुनि आत्मा का कल्याण कर रहे हैं। रानी को भी अच्छे विचार आने लगे।

इस प्रकार चारों को उत्तम विचार आये। चारों ने दीक्षा लेकर आत्मा का कल्याण किया।

इलायचीकुमार, राजा – रानी और नटिनी ने अपना कल्याण तो किया ही, साथ ही हम लोगों को भी वे नया पाठ सिखा गये। धन्य है उनकी शक्ति !

पाठ तेरहवाँ

देशभक्त भामाशाह

जन्मभूमि – हित के लिए, त्याग धन्यप्रवाह ।
जैन जाति के रत्न थे, वे श्री भामाशाह ।

सिंह गरजते हैं । हिरन भय के मारे इधर से उधर दौडते हैं । भयानक जंगल है । उसमें बडे - बडे साँप, बाघ, सिंह, अजगर और दूसरे प्राणी रहते हैं । आसपास में छोटी – मोटी टेकरियां हैं । नदियाँ बहती हैं । पक्षी नजर नहीं आते । यह है अरावली पर्वत !

पच्चीस पचास मनुष्यों का झुंड भी वहाँ जाने में थर - थर काँपता है, ऐसे स्थान में एक कुटुंब रहता है । माँ है बाप है और कुछ बालक हैं । बालक भूखा हो गया है वह रोटी माँगता है । मां कहती है—बेटा ! रोटी अभी आई नहीं है । पिता अपनी हालत पर विचार करके उदास हो जाता है ।

यह पिता और कोई नहीं, मेवाड के महाराणा प्रताप हैं । वे चितौड के राजा हैं ।

उन्हें इस समय खाने के लिए भी सांसे पड़ रहे हैं । टेकरियों - टेकरियों पर भटकना पड़ रहा है । किसलिए ? सिर्फ अपनी टेक रखने के लिए । चितौड छोड़कर इस समय वे वहाँ भटक रहे हैं । चितौड नहीं छोड़ा था तब अकबर बार-

वार कहलवाता था-सभी राजा मेरे सामने झुके हैं; पर तुम क्यों नहीं झुकते ?

किन्तु प्रताप एक ही उत्तर देता—प्रताप का मस्तक सत्य के सामने झुकेगा, सत्ता के सामने नहीं झुकेगा। अकबर बादशाह के सेनापति राजा मानसिंह भी उन्हें समझाते—'राणाजी, बहुत हठ करने में मज़ा नहीं है। मान जाओ। बादशाह मेरे समान आपका भी सन्मान करेंगे। आपको जागीर देंगे।'

राणा ठंढे दिल से उत्तर देते-भाई ! अपनी बहिन-बेटियों को बेचकर दौलत लेने की अपेक्षा गरीबी ही भली है। किसी की खुशामद करने से तो जंगल में भटकना अधिक अच्छा है। समझे मानसिंह !

अन्त में हुआ भी यही ! प्रताप की हार हुई और उन्हें चित्तौड़ छोडकर जंगल-जंगल भटकना पड़ा।

बडों-बडों के छक्के छूट जाते हैं; मगर प्रताप अपनी टेक के पक्के ह। दुःख ही दुःख में बहुत दिन बीत गये।

यकायक प्रताप सोचने लगे—मैं इस तरह भटक रहा हूँ। मेरा कुटुम्ब भी मेरे साथ भटक रहा है। यह सब तो ठीक है, लेकिन यह बिचारे सीशोदिया भी मेरे साथ मारे-मारे फिरते हैं। ये भूख, प्यास, सर्दी और गर्मी सहन कर रहे हैं। इस तरह दूसरों को कष्ट पहुचाने की अपेक्षा मेरा संन्यास ले लेना क्या बुरा ह ?

उसी समय प्रताप के पास एक पुरुष आता है। उस पुरुष के माथे पर मेवाड़ी पगड़ी बँधी है। कंधों पर लम्बा दुपट्टा है। न बहुत मोटा, न बहुत पतला, न ज्यादा लम्बा, न ज्यादा ठिगना कद वाला अधेड़ उम्र का यह पुरुष है। उस की मूंछें लम्बी हैं और कुछ-कुछ पकने लगी हैं। जैसी उसकी रौबदार मूंछें हैं, वैसा ही रौबदार वह स्वयं है।

महाराणा प्रताप की जय हो, कह कर आगत पुरुष महाराणा को प्रणाम करता है। प्रताप उसे देख कर क्षण भर के लिए चकित रह जाते हैं। फिर कहते हैं—अहो! भामाशाह सेठ! इस समय यहाँ कैसे?

भामाशाह—अपनी तुच्छ-सी भेंट आपके चरणों में अर्पित करने आया हूँ।' इतना कहकर सेठ भामाशाह कुछ दूरी पर आती हुई गाड़ियों की ओर इशारा करते हैं।

उन गाड़ियों में क्या था? पच्चीस हजार सैनिकों का बारह वर्ष तक खर्च चल सके, इतना धन उनमें भरा था।

प्रताप—भामाशाह! यह सब किसके लिए?

भामाशाह—प्रजा के लिए, मेवाड़ माता की रक्षा के लिए! आप प्रजाके नायक हैं। इसका उपयोग कीजिए और प्रजा की रक्षा कीजिए।

प्रताप--मेवाड़ की प्रजा को मैंने बहुत कष्ट पहुँचाया है। अब हद हो चुकी है भामाशाह! अब मेरा संन्यास लेना ही उत्तम ह।

भामाशाह--प्रजा की रक्षा करना आपका धर्म है। धर्म पूरा होने से पहले संन्यास शोभा नहीं देता महाराणा! आप

ही प्रजा के आधार हैं। आप ही प्रजा की रक्षा कर सकेंगे। प्रजा आपका नाम सुनकर जूझने के लिए तैयार हो जायगी। आप महल छोड़कर जंगल में भटक रहे हैं इस दुःख की अपेक्षा प्रजा का दुःख बहुत कम है। आप प्रजा के दुःखों का विचार न कीजिए। उठिये।

प्रताप—भामाशाह ! तुम्हारे वचन मधुर हैं। तुम्हें वे शोभा देते हैं। मगर इस धन का बोझ मैं अपने माथे पर नहीं ले सकता। तुम राज्यभाग देते ही हो। उससे अधिक लेने का मुझे क्या अधिकार है ? यह धन तुम्हारा ही है।

भामाशाह—धन तो देश का है पृथ्वीनाथ ! तालाब पानी का संग्रह करता है पर प्रजा की भलाई के लिए। इसी प्रकार वैश्य धन का जो संग्रह करते हैं सो भी प्रजा की भलाई के लिए ही। महाराणा ! आज देश पर विपत्ति आई है। ऐसे अवसर पर धन काम न आया तो फिर कब काम आएगा कम राज्यभाग लेना राजा का कर्त्तव्य है। लेकिन यह तो आपके लिए नहीं, प्रजा के लिए है। न जाने कितने वीरोंने देश के लिए प्राण दिये हैं। उस बलिदान के आगे इस धन की क्या कीमत है ?

कितने भावपूर्ण हैं भामाशाह के वचन ! कितनी प्रगाढ़ उनकी देश भक्ति ! सैनिक प्रसन्न होकर जय जयकार करने लगे !

भामाशाह का धन पाकर प्रताप ने फिर चित्तौड़ ले लिया। चित्तौड़ की प्रजा विजयी हुई। धर्म की टेक रही।

ऐन मौके पर भामाशाह ने मदद की तो यह काम हो सका। भामाशाह वैश्य थे। जैन थे।

धन्य है वणिक् भामाशाह !
धन्य है जन्मभूमि का वह पुजारी !

हमें भावना रखनी चाहिए कि हम भी भामाशाह के समान जैन बनकर देश की सेवा करें।

पाठ चौदहवाँ

दृढ़ अमरकुमार

अमर कुमार अमर बने, टाले भव के रोग
श्रेणिक को अच्छा किया, कर नमस्कार-प्रयोग ॥

मगध के राजा श्रेणिक चित्रशाला बनवा रहे थे। वे चित्रशाला का दरवाजा बनवाते, मगर पूरा बनने से पहले ही वह टूट कर गिर पड़ता था। किसी ने कहा—'बत्तीस लक्षण वाले बालक की बलि चढ़ाओ।' श्रेणिक उस समय तक भगवान् महावीर के शिष्य नहीं बने थे। उन्होंने यह बात मान ली मगर प्रजा के बालक को जबर्दस्ती कैसे लें ? यह सोच कर उन्होंने ढिंढोरा पिटवाया--जो अपने बत्तीस लक्षण वाले बालक को देगा, उसे उसकी तोल की सोना मोहरें दी जाएँगी।'

अमरकुमार बत्तीस लक्षणों वाला बालक था। उसका रूप अनुपम था। उसकी वाणी प्यार उपजाने वाली थी। उसका पिता उसे बहुत प्यार करता था। लेकिनमाता उसे कतई नहीं चाहती थी।

अमरकुमार की माता ने ढिंढोरा सुना। सोचा–मौका अच्छा है। अमरकुमार के पिता का नाम ऋषभदत्त था। ऋषभदत्त गरीब ब्राह्मण था। पर बालक इस बात को क्या समझें? 'दादा! मुझे यह चाहिए, वह चाहिए, ला दो।' इस तरह वह नयी-नयी चीजें माँगा करता, किन्तु घर में तो खाने के लाले पड़ रहे थे।

अमरकुमार की माँ ने आकर कहा – – ढिंडोरा पिटा है सो सुना?

ऋषभदत्त––हाँ।

ब्राह्मणी — तो फिर उठते क्यों नहीं? यह दुःख तो किसी भी प्रकार सहन नहीं होता।

ऋषभदत्त — सोने की वह मोहरें तो बत्तीस लक्षणों वाले पुत्र के बदले में मिल सकती हैं?

ब्राह्मणी — यह अपना अमरिया किस काम आएगा?

यह बात सुनकर ब्राह्मण थोड़ी देर तक चुप रह गया। हाय! बेटा जैसा बेटा मरने के लिए कैसे दिया जा सकता है? मगर भूख का मारा मनुष्य क्या नहीं कर गुजरता? वह भूख से ऊब गया था। उसने ब्राह्मणी की बात मान ली।

अमरकुमार सिपाहियों के सिपुर्द कर दिया गया और उसके बदले दाम ले लिया गया।

लोग चित्रशाला में इकट्ठे हुए हैं। आग की ज्वालाएँ भभक रही हैं। नगर - निवासियों को यह बात बहुत चुभती है और वे आपस में कहते हैं–कैसा अनर्थ हो रहा है! इन लोगों

में तनिक भी दया नहीं है। मगर किसी की हिम्मत नहीं जो राजा से कह सके ! कुछ निर्दय लोग माँबाप की तरफदारी भी कर रहे थे।

इसी समय नौकर अमरकुमार को लेकर आये। वह चाहे रोवे या न रोवे, मरने के सिवाय कोई दूसरा मार्ग नहीं था। जब माँ-बाप ही ने उसकी रक्षा न की तो दूसरा कौन रक्षा करने बैठा था ! हाय ! कितना दुःख।

अब वह आप ही अपना नाथ बना। किसी मुनि ने उसे नमस्कार मन्त्र सिखलाया था। वही अचानक उसे याद आ गया। उसे ऐसी खुशी हुई, मानो डूबते को नाव मिल गई हो। अमरकुमार ने अपने मन को मजबूत किया और नमस्कार मन्त्र का जाप जपना शुरु किया:—

नमो अरिहंताणं।
नमो सिद्धाणं।
नमो आयरियाणं।
नमो उवज्झायाणं।
नमो लोए सव्वसाहूणं।

यह मन्त्र जपते-जपते अमरकुमार ने आग में प्रवेश किया, जैसे किसी सुगन्ध वाले जल के हौज में प्रवेश कर रहा हो।

अमरकुमार के गरम आंच भी नहीं लगी। श्रेणिक चक्कर खाकर गिर पड़ा।

महामन्त्री उसे होश में लाने का उपाय करने लगे। तत्काल बहुत से लोग तैयार हो गये। बड़े-बड़े वैद्य आने लगे

मगर नतीजा कुछ न निकला। सब सोचने लगे — अमरकुमार को दुःख देने का ही यह बदला मिला है।

धू-धू करके जलती हुई चिता में अमरकुमार योगी की तरह बैठा था और नमस्कार मन्त्र जप रहा था।

सब को लगा कि इस बालक में बहुत शक्ति है। सब लोग उसके चरणों में गिरे और कहने लगे—बापजी ! राजा को बचाओ।

अमरकुमार ने कहा — राजा पर मुझे ज़रा भी क्रोध नहीं चढ़ा है। मैं उसका अनिष्ट चाहता भी नहीं हूँ। फिर भी मैं जो कुछ कर सकता हूं, राजा का अच्छा करने के लिए करूँगा। इसके बाद उसने नमस्कार मन्त्र पढ़कर राजा के ऊपर पानी छिडका। पानी छिडकते ही राजा अंगडाई लेते हुए खडा हो गया।

लोग अमरकुमार का बखान करने लगे। राजा ने कहा जो मांगोगे, वही तुम्हें दूंगा।

पर अमरकुमार ने सोचा — यह सब नमस्कारमन्त्र का प्रभाव है। इस मन्त्र को जपने से सब दुःखों का अन्त हो जाता है। इस मन्त्र के प्रताप से मैं संसार के दुःखों का नाश कर सकूंगा।

अमर कुमार ने दीक्षा ली और साधु बनकर समस्त दुःखों का अन्त किया।

धन्य है अमरकुमार की दृढ़ता !

धन्य है उसकी नमस्कार मन्त्र पर अटल श्रद्धा!!

पाठ पन्द्रहवाँ

धर्मरुचि मुनिराज

अपने मस्तक पर लिया, नागश्री का दोष,
गये परठने शाक को, जो था विष का कोष ।
हिंसा होती देखकर, जीव—दया के काज ,
आह ! स्वयं ही खा गये, धर्मरुचि मुनिराज ॥

आज तीस उपवास का पारणा था । गुरु की आज्ञा लेकर मुनिराज भिक्षा के लिए निकले । गुरुजी का नाम धर्मघोष था और शिष्य का नाम धर्मरुचि था ।

आहार अच्छा मिले या बुरा मिले, इस बात की मुनिराज को परवाह नहीं थी । एक बाई ने मुनिराज को बुलाया । वह शाक से भरा बडा-सा वर्त्तन लाई । मुनिराज ने पात्र उसके आगे रख दिया । बस,बस कहनेपर भी उस बाई ने वर्त्तन का सारा शाक मुनिराज के पात्र में उडेल दिया ।

शाक देने वाली बाई का नाम था, नागश्री । वह ब्राह्मणी थी । उसके श्वसुर के तीन लडके थे । तीनों की तीन स्त्रियाँ थीं । तीनों भाइयों का हिस्सा-बाँट हो गया था और तीनों अलग-अलग रहते थे । फिर भी वे भोजन शामिल ही करते थे, जिससे खर्च कम हो और आपस में प्रेम बढे ।

आज नागश्री की रसोई बनाने की बारी थी । उसकी

बड़ी इच्छा रहती थी कि मैं अपनी देवरानियों से अच्छी कहलाऊँ ! इसलिए उसने आज भाँति-भाँति का भोजन बनाया था। जल्दी-जल्दी में वह शाक चखना भूल गई। शाक तैयार हो जाने पर सबने चखा तो मालूम हुआ कि वह तो जहर सरीखा कड़ुवा है !

नागश्री सोचने लगी—अब क्या करूँ ? अभी सब आएँगे और शाक चाखते ही मेरी हँसी करेंगे। इसे कहाँ फैंक आऊँ ? ऐसा विचार वह कर ही रही थी उसी समय वहाँ मुनिराज पधार गये। वह उपाय खोज रही थी सो मिल गया। उसने सारा शाक मुनि के पात्र में डाल दिया।

मुनिश्री शाक वहर कर गुरू महाराज के पास स्थानक में जा रहे हैं। यहाँ शाक देकर नागश्री बहुत खुश हुई। उसने सोचा—चलो, लाज बची और बला टली। उसने अपनी भलाई तो देखी, मगर यह नहीं सोचा कि मुनि का क्या होगा ? उसे इस बात की परवाह ही नहीं थी कि उसने आज कितना भयंकर पाप कर डाला है !

उधर मुनिराज शाक लेकर अपने गुरुजी के पास पहुँचे। नियम के अनुसार उन्होंने अपना पात्र गुरुजी को बतलाया। गुरुजी ने शाक को देखकर कहा—'यह शाक ज़हरीला है। इसे यतना के साथ परठ आओ।'

जैनधर्म के अनुसार जूठन डालना या फेंक देना पाप माना गया है; पर ऐसे मौके पर उसमें दोष नहीं गिना जाता।

गुरू की आज्ञा लेकर धर्मरुचि मुनि बाहर गये। उन्होंने शाक का एक बूंद लेकर यतनापूर्वक ज़मीन पर गिराया। शाक

बहुत सुगन्ध वाला था। उसकी सुगन्ध से चीटियाँ आने लगीं। चीटियों ने ज्यों ही शाक चखा कि उसी दम भर गईं। दया-सागर मुनि चीटियों का मरना नहीं देख सके।

'अरे रे! यह घोर हिंसा इस शाक के कारण हो रही है।' मुनिराज नें ऐसा विचार किया। वास्तव में इस हिंसा का पाप नागश्री को लगता, मगर दयालु मुनि दुसरे का दोष नहीं देखते। वे जीवों की हिंसा टालने में ही अपना कल्याण मानते हैं।

मुनि नें बार-बार जगह बदली, मगर वे जहाँ कहीं जीवों की यतना पालने जाते, वहीं चीटियाँ आ जाती थीं। अन्त में उन्होंनें एक स्थान खोज निकला। वह स्थान कौन-सा था? अपना पेट!

मुनिराज ने विचार किया-'मैं इस शाक को खालूं तो ही इन जीवों की रक्षा हो सकती है।' यह विचार कर और भगवान् का नाम लेकर उन्होंने शाक खा लिया। मुनिराज ने अपना जीवन सुधार लिया। शरीर को वहीं छोडकर उनकी आत्मा परलोक चली गई।

मुनिराज ने तो नागश्री का दोष अपने माथे ले लिया था मगर कहावत है--'पाप छिपाये ना छिपे!' अन्त में नागश्री का यह पाप प्रगट हो गया। वह अपनी लाज बचाने चली थी, मगर अब उसकी आबरू मिट्टी में मिल गई! नाराज होकर उसके पति ने उसे घर से निकाल दिया।

नागश्री अब बहुत पछताने लगी। गांव के लोग भी उसका

तिरस्कार करने लगे। मुनिश्री की मृत्यु से सब को बडी चोट पहुँची। धन्य हैं ऐसे दयालु महात्मा !

॥ दोहा ॥

मास-खमण के पारणे, धर्मरुचि अनगार,
भिक्षाटन करते गये, नागश्री के द्वार।
कडुवे तूंबे का बना, ज़हरीला था शाक,
वहराया मुनिराज को, खोटे कर्म विपाक।
काफी जान आहार वह, गये नहीं अन्यत्र,
मुनिवर पहुँचे शाक ले, गुरु थे जहाँ पवित्र।
दिखलाया गुरुदेव को-लाये यह आहार,
गुरु बोले-खाना नहीं, परठो यतना धार।
गुरु-आज्ञा स्वीकार कर, गये दूर अनगार,
खडे अवा‡ के पास हो, करने लगे विचार।
यतना से परठूं कहाँ, चिटियाँ चारों ओर,
उदर एक निर्वाध है, और न दीखे ठौर।
जीव दया कर जहरमय, किया स्वयं आहार,
लेश्या शुक्ल विशुद्ध में करके स्वर्ग-विहार।
स्वर्ग अनुत्तर में गये मुनिवर समता धार,
ज्ञाताधर्मकथांग में है विस्तृत अधिकार।

झवेरचन्द जादवजी कामदार

‡अवा-आपाक-कुम्भार के वर्त्तन पकाने का स्यान।

काव्य-विभाग
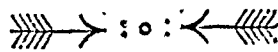
१—प्रियतम प्रभु

प्रियतम प्रभु प्रणमूं सदा, जपूं तुम्हारा जाप,
[1]ज्ञान दीप दिल में दिपे, [2]दग्ध दुखद हो पाप।
बलसागर! आगर-दया, रग-रग हो बलवान,
नस-नस बस जावे विनय, तहश-नहस हो मान।
मांज [3]मुकुर-मन मम प्रभो, कर निर्मल मतिमान,
गहे [4]वदन-विधु देव का दिव्य दीप्ति द्युतिमान।

२—भावना

भजन

निश दिन चाहूँ ऐसा देव!
निश दिन चाहूँ ऐसा देव!
सदैव तुझको सेऊँ देव! निश दिन ऐसा चाहूँ देव!
अनजाने भी मेरे कर से, [5]श्रेय सभी का होवे,।
तन मन धन साधन सब मेरे इस पथगामी होवे।

---

१ ज्ञानदीप-ज्ञान रूपी दीपक। २ दग्ध-भस्म। ३ मुकुरमन-मन रूपी दर्पण। ४ वदनविधु-मुखरूपी चन्द्रमा। ५ श्रेय-कल्याण, भला।

अर्पण योग्य स्थान पर करूँ, प्रेम दशा प्रकटाओ,
[1]याचकता की तजूं दशा में [2]सद्‌गुणगण उभराओ। देव!
पाप-पंथ में पैर न रक्खूं, देव! समझ यह आओ,
सुख में भी भूलूं न तुझे मैं, यों अविकार जमाओ। देव!
काम क्रोध मद लोभ लुटेरे, लूट मुझे नहिं पावें,
अन्त काल सुसमाधिरण हो [4]मनोव्यथा नहिं पावें। देव!
मृग-जल जैसे विषयभोग में, मन ललचाय न मेरा,
शरणागत इस 'संत-शिष्य' को शरण जिनेश्वर! तेरा। देव!

३ – मानवता –

-० ०- दोहे -० ०-

सदा सत्य- [7]अनुरक्त हो सेवे सत्य सदा हि।
शीश कटावे [8]सत्य–हित, मानव वह जग मांहि। १।
[9]वेहक. जो छूए नहीं, खरी कमाई खाय,
परनारी माता गिने, मानव वह जग मांय। २।
सुख पाये छलके नहीं, कष्ट न कांपे काय।
सुख–दुःख को सपना गिने, मानव वह जग मांय। ३।
उपकारी को जो करे, दिल से खूब सहाय।
सज्जन की संगति करे, मानव वह जग माय। ४।

याचकता-भिखारीपन। २ सद्‌गुणगण-अच्छे गुणों का समूह७ ३ सुसमाधिमरण-शान्तिमय मृत्यु। ४ मनोव्यथा- मन की पीड़ा। ५ मृग - जल - झूठे काल्पनिक। ६ विषयभोग - इन्द्रियों के सुख। अनुरक्त-प्रेमी। ८ सत्यहित-सत्य के कारण। ९ वेहक-विना हक का

[1]पल भर भी [2]पुरुषार्थ विन, जिसका कभी न जाय।
आलस से वचता रहे, वह मानव जग मांय ॥५॥
सुख पावें जग जीव सव, ऐसा करे उपाय।
दुःख से लेश डिगे नहीं, वह मानव जग मांय ॥६॥
पकडे टेक तजें नहीं प्राण भले ही जाय।
पैर धरे न अधर्म में, वह मानव जग मांय ॥७॥
सद्गुरु का रसिया वने, दुर्गुण से न दवाय।
'संत शिष्य' सुखिया सदा, वह मानव जग मांय ॥८॥

४—सर्वमान्य धर्म

-- चौपाई --

(१)

धर्म — तत्त्व यदि पूछे मुझे,
तो सस्नेह वताऊं तुझे।
जो सिद्धान्त [3]सकल का सार,
[4]सर्वमान्य सवको हितकार।

(२)

भाखा भापण में भगवान्,
धर्म न दूजा दया समान।

पलभर-थोडी देर, क्षण। २ पुरुषार्थ-परिश्रम, मिहनत। ३ सिद्धान्त-शास्त्र। ४ सर्वमान्य-सबके मानने लायक।

अभयदान[1] दो अरु संतोष-
प्राणी को दो, नाशो दोष,

(३)

सत्य, शील औ' सारे दान,
दया हुई तो समझ प्रमाण।
दया नहीं तो ये नहीं एक,
विना सूर्य किरणें नहिं देख।

(४)

पुष्प-पांखुड़ी जहां दुखाय,
जिनवर की तहँ आज्ञा नाय,
सब जीवों का चाहो [2]सौख्य,
महावीर की [3] शिक्षा मुख्य।

५—धर्म ऐसा हमारा है।

कव्वाली-गजल

पुत्र महावीर के हम हैं, हमारा धर्म न्यारा है,
समझना सत्य की वाणी, धर्म ऐसा हमारा है ॥ १ ॥
बजाकर संघ की सेवा, बनेंगे हम सदा ऐसे,
प्राण तज कर सभी देना, धर्म ऐसा हमारा है ॥२॥

---

१ अभयदान-जीवनदान' भय रहित करना। २ सौख्य-सुख।
३ शिक्षा-उपदेश।

जो देने योग्य हो देना जो लेने योग्य हो लेना,
जो पीन योग्य हो पीना, धर्म ऐसा हमारा है ॥३॥
सभी से मित्रता करना, लगन बस प्रेम की वरना,
[1]मुसीवत संघ की हरना, धर्म ऐसा हमारा है ॥ ४ ॥
सदा ही [2]न्याय-रत रहना, कपट-छल में नहीं वहना,
सदा आनंद में रहना, धर्म ऐसा हमारा है ॥ ५ ॥
धर्म के मार्ग पर चलना, धर्मपर प्राण दे देना,
हमेशा 'संत-शिष्यों' को, परम यह धर्म प्यारा है ॥६॥

६—मधुर बात

गजल

मधुर-सी वात यह सारी, लीजिए ध्यान में धारी।
सभी को सौख्य देनारी, मधुर-सी वात यह सारी ॥ १ ॥
अनीति को न अपनाएँ, न [3]दूपित ज्ञान को कर लें।
न कहकर फिर कभी [4]मुकरें, मधुर-सी वात यह सारी ॥ २ ॥
सदा संतोष ही मानें, न ईर्पा-द्वेष अपनाएँ।
न कडुवे बोल हम वोलें, मधुर-सी वात यह सारी ॥ ३ ॥
सदा गहने सुगुण के हों, सखा ! नित शील व्रत पालें।
कुसंगति से बचें हरदम, मधुर-सी वात यह सारी ॥ ४ ॥
दुखी के दुःख को हर लें, सफल जीवन यही करलें।
संत के शिष्य हो रहिए, मधुर-सी वात यह सारी ॥ ५ ॥

१ मुसीवत-कठिनाई। २ दूषित-दोषवाला। ३ न्याय-रत-न्याय में तत्पर। ४ मुकरें नटें—इन्कार करें।

रात्रि – प्रार्थना

(७) सदा मैं ऐसा बनूं भगवान्

राग – धनाश्री

ऐसा बनूं भगवान् ! सदा मैं ऐसा बनूं भगवान् !
अज्ञान त्यागूं ज्ञान फैलाऊं, सच्चा बनूं विद्वान् ॥
सदा मैं ऐसा बनूं भगवान् ॥ १ ॥
देश समाज धर्म की सेवा, परहित में बलवान् ।
सदा मैं ऐसा बनूं भगवान् ॥ २ ॥
[१]पतित [२]दलित नर को मैं तारूं, चाहे जावे प्राण ।
सदा मैं ऐसा बनूं भगवान् ॥ ३ ॥
उच्च-नीच का भेद भूलकर, दूं सबको सन्मान ।
सदा मैं ऐसा बनूं भगवान् ॥ ४ ॥
[३]धीर वीर [४]निर्भय होकर मैं, अन्त बनूं भगवान् ।
सदा मैं ऐसा बनूं भगवान् ॥ ५ ॥

(८) चौवीस तीर्थङ्कर स्तुति

राग – आरती

जय जय शिवदाता, प्रभु ! जय जय शिवदाता,
तुझको वन्दन करते, गाते गुण गाया, जयदेव, जयदेव ।
आदिनाथ अजित, संभव गुणकारी, प्रभु सं०
कष्ट हमारे काटो, हे भवभय हारी, जयदेव, जयदेव ।

पतित-गिरे हुए, पापी । २ दलित-सताये हुए, दुःखी ।
३धीर – धीरज वाला । ४ निर्भय-निडर ।

अभिनन्दन सुमति पद्म तू मम प्यारो, प्रभु प०
सुपार्श्व चन्द्र सुविधि, शीतल भव तारो, जयदेव, जयदेव ।
श्रेयांस वासु विमल, अनन्त गुण नामी, प्रभु अ०
कष्ट भवों के काटे, शिव-रगणी स्वामी, जयदेव, जयदेव ।
धर्म धुरन्धर नाथ आप वसे मुक्ति, प्रभु आ०
शान्तिनाथ प्रभु सुनिये, दास की यह उक्ति, जयदेव २
कुन्थुनाथ जिनवरजी, विपद्रा से तारो, प्रभु वि०
अर मल्ली को प्रणमूं, पीड़ा सब वारो जयदेव २
मुनिसुव्रत महाराज, अगणित मम स्वामी, प्रभु अ०
वंदू शीश नमाके, तारो अन्तरयामी, जयदेव जयदेव ।
नेमिनाथ भगवान्, भाव धरी [1]भालो प्रभु भा०
निर्मल [2]नेम नगीना, दुःख सभी टालो, जयदेव जयदेव ।
पारस परम कृपाल, जन पालन हारा, प्रभु ज०
वर्धमान जिन वंदूं, शासन सब तारा, जयदेव जयदेव ।
चौवीस जिन भक्ति, भावसहित करना, प्रभु भा०
जन्म-मरण दुःख टाली, मुक्ति को वरना, जयदेव जयदेव ।

धून

ऋषभ जय प्रभु पारस जय जय ।
महावीर जय गुरु गौतम जय जय ॥
सन्त भजो, भगवन्त भजो ।
सब भाव सहित भगवन्त भजो ॥

---

१ भालो—देखो, ध्यान दो । २ नेम—नेमनाथ